नरेन्द्र कोहली

लियाँ

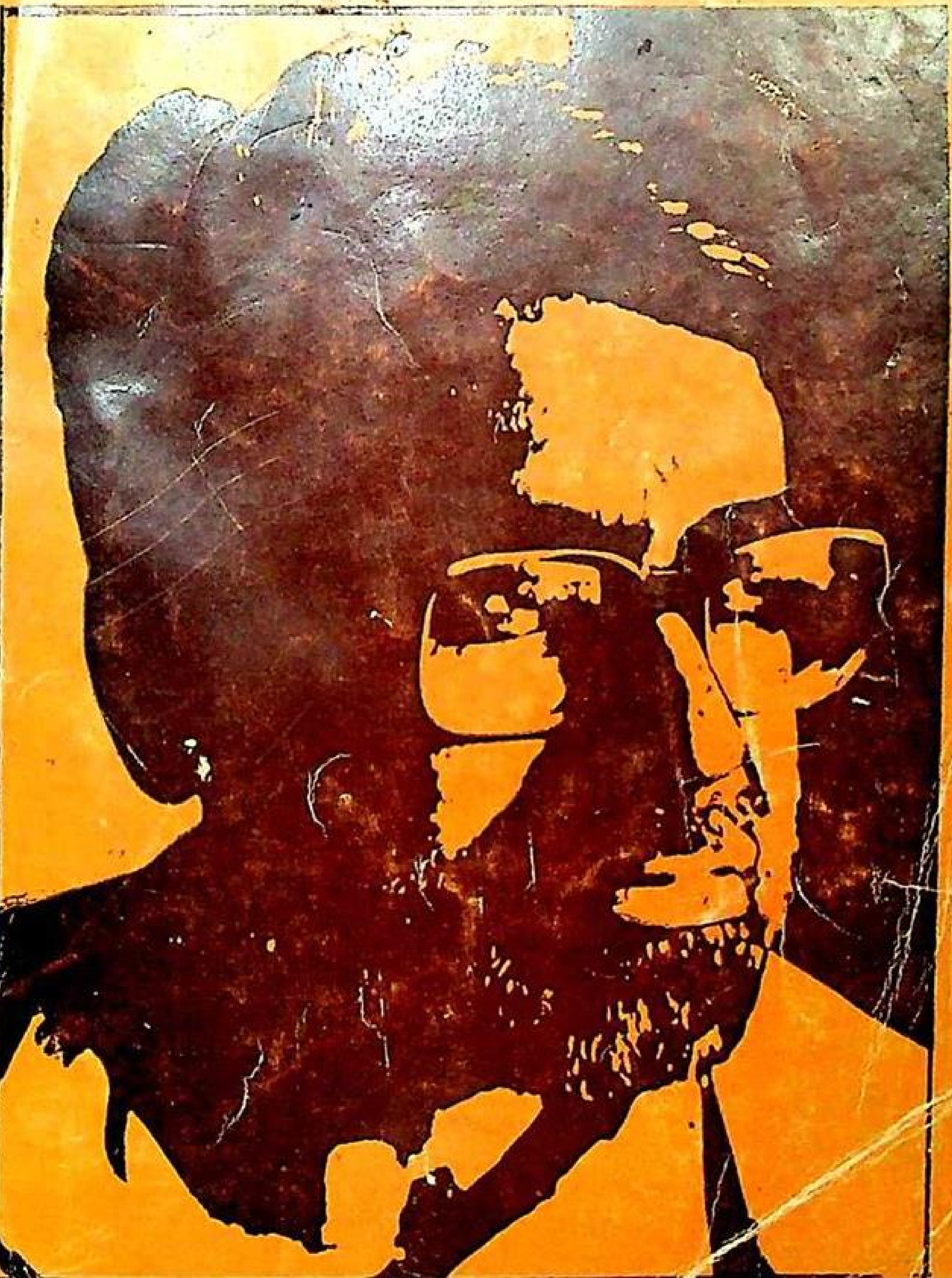

नरेन्द्र कोहली की कहानियां

विकास
पेपरबैक्स

नरेन्द्र कोहली की कहानियां

पाठकों से अनुरोध

विकास पेपरबैक्स इस पुस्तक के प्रकाशन, आवरण शिल्प तथा इससे सम्बन्धित आपके किसी भी सुझाव का स्वागत करेगा जो आपकी पुस्तक-रुचि के संदर्भ में भावी प्रकाशनों में सहयोगी होगा।

कृपया प्रकाशक को अपने सुझाव भेजें।

हि
891.433
नरे. न

BHARATI BHASHA ...
36A Shakespeare Sa...
Acc No. 3819
Date 05/12/12

201701256
H/891.433
नरेन्द्र कोहली
6
423

© नरेन्द्र कोहली

मूल्य : दस रुपये / प्रथम संस्करण : 1984 / आवरण शिल्प : सु० चटर्जी / प्रकाशक : विकास पेपरबैक्स, IX/221 मेन रोड, गांधीनगर, दिल्ली-31 / मुद्रक : संजीव प्रिंटर्स, महिला कालोनी, गांधीनगर, दिल्ली-110031

Narender Kohli Ki Kahanian Price : Rs. 10.00

नरेन्द्र कोहली

6 जनवरी, 1940 के दिन स्यालकोट में जन्म हुआ। लाहौर, स्यालकोट, जमशेदपुर तथा दिल्ली में शिक्षा पाई। 1960 ई० में कहानियां प्रकाशित होनी आरंभ हुईं। अब तक 'परिणति', 'कहानी का अभाव', 'दृष्टि देश में एकाएक', 'नमक का कैदी', 'शटल' तथा 'निचले फ्लैट में'—कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

कहानियों के बाद व्यंग्य का दौर चला। 'एक और लाल तिकोन', 'पांच एब्सर्ड उपन्यास', 'जगाने का अपराध', 'आधुनिक लड़की की पीड़ा' तथा 'त्रासदियां'—व्यंग्य-संकलन प्रकाशित हो चुके हैं।

तब नरेन्द्र कोहली की दृष्टि उपन्यास की ओर मुड़ी। उनके 'पुनरारंभ', 'आतंक', 'साथ सहा गया दुःख', 'जंगल की कहानी', 'आश्रितों का विद्रोह', 'मेरा अपना संसार'— उपन्यास प्रकाशित हुए। उपन्यासों में नरेन्द्र कोहली को सबसे अधिक ख्याति उनके पौराणिक उपन्यासों ने दी। उन्होंने रामकथा को 'दीक्षा', 'अवसर', 'संघर्ष की ओर' तथा 'युद्ध' (दो भाग) नामक चार उपन्यासों के रूप में प्रस्तुत किया। गीता के कर्म-सिद्धांत को उन्होंने सुदामा तथा कृष्ण की कथा के माध्यम से अपने उपन्यास 'अभिज्ञान' में प्रस्तुत किया। इन कृतियों से नरेन्द्र कोहली ही नहीं, हिंदी उपन्यास-साहित्य भी गौरवान्वित हुआ। एक ऐतिहासिक उपन्यास 'आत्मदान' भी प्रकाशित हो चुका है,

नाटक के क्षेत्र में भी नरेन्द्र कोहली पीछे नहीं रहे। उनके पहले ही नाटक 'शंबूक की हत्या' ने उन्हें सिद्ध नाटककार के रूप में स्थापित कर दिया। 'निर्णय रुका हुआ' तथा 'हत्यारे' ने उनकी ख्याति को और भी पुष्ट किया।

संप्रति : मोतीलाल नेहरू कॉलेज, नई दिल्ली के हिंदी विभाग में अध्यापक हैं।

क्रम

9 परिणति
31 चारहान का जंगल
73 वृत्त
98 ज़मीन का खाली प्लॉट
119 एक ही विकल्प ?
166 पद-प्रतिष्ठा

परिणति

अनुराधा बहुत देर से आयी और जब आयी तो बहुत उदास थी।

अमिताभ ने उसे देखते ही कारण पूछना चाहा—देर का भी और उदासी का भी; पर वह अनुराधा को बहुत अच्छी तरह जानता था। पूछने पर वह बड़ी सुविधा से सारा दोष परिवहन-व्यवस्था पर डाल सकती थी। और उदासी का कारण? वह अनुराधा नहीं बताएगी। जितनी बार पूछेगा, उतनी ही बार वह कहेगी, "कुछ नहीं हुआ। तुम तो खामखाह ही पीछे पड़ जाते हो!"

अमिताभ ने कुछ नहीं पूछा।

वे मौरिसनगर से यूनिवर्सिटी लायब्रेरी की ओर जा रहे थे। चुपचाप।

फिर अनुराधा ही बोली, "सुनो अमि! एक बात कहनी है, पर इस एश्योरेंस के साथ कि तुम उसका कारण नहीं पूछोगे, पूछताछ नहीं करोगे।"

अनुराधा स्वयं ही खुल रही थी। फिर अधिक कुरेदने की आवश्यकता? वह जानता था, अनुराधा उससे कुछ छिपा नहीं पाएगी। पहले थोड़ी-सी बात बताएगी, फिर आधी और जाते-जाते पूरी बात कह जाएगी।

अनुराधा को आश्वस्त करने के लिए ही उसने कह दिया, "नहीं पूछूंगा।"

सोचा था, उसके यह कहते ही अनुराधा शुरू हो जाएगी और बात समाप्त करने से पूर्व चुप नहीं होगी।

पर अनुराधा चुप ही रही।

अनुराधा की चुप्पी से अमिताभ के स्नायुओं पर बोझ बढ़ने लगा था।

लायब्रेरी की सीढ़ियां चढ़कर अमिताभ हटकर एक किनारे खड़ा हो गया। अनुराधा काउंटर पर चली गई। किताबें लौटाने में उसे पांच मिनट

से अधिक नहीं लगे। कार्ड वापस ले, उसने अपने पर्स में डाले और साड़ी का पल्लू ठीक करती हुई लायब्रेरी के स्टैक-हॉल की ओर मुड़ गई।

अमिताभ को साथ चलना पड़ा। उसको अनुराधा का स्टैक-हॉल में जाना अच्छा नहीं लग रहा था। वह बात, जो अनुराधा उसे बताने वाली थी, क्या है? अधिक प्रतीक्षा वह नहीं कर सकता था। वह जल्दी-से-जल्दी लायब्रेरी से बाहर निकलना चाहता था ताकि अनुराधा से वह बात पूछ सके। पर अनुराधा स्टैक-हॉल में जा रही थी, जहां से चार-पांच पुस्तकें छांटेगी, फिर उन्हें ईशू करवाएगी और तब बाहर निकलेगी। इस सबमें आधा-पौना घंटा तो लग ही जाएगा।

अनुराधा शेल्फें खंगाल रही थी। जिस शेल्फ के सामने जा खड़ी होती, उसकी कोई भी पुस्तक अनछुई न रहने देती। और तब तक अमिताभ की दृष्टि, आस-पास खड़े, पुस्तकें देखने में संलग्न लोगों को उलटती-पलटती रही।

अनुराधा ने तीन पुस्तकें चुनीं। अपने पर्स में से ईशू कराने वाले तीन कार्ड निकाले और उसे इंगित किया, 'आओ, चलें।'

अमिताभ आगे-आगे चलता हुआ, पहले ही दरवाज़े से बाहर निकल सीढ़ियों पर आकर खड़ा हो गया। अनुराधा पुस्तकें ईशू करवा, पीछे-पीछे ही आ गई।

"क्या बात है?" सीढ़ियां उतरते ही अमिताभ ने पूछा।

"बता दूंगी!" अनुराधा बोली। उसका स्वर टालने वाला नहीं था।

अमिताभ को लगा, अभी एक-आध बार और पूछना पड़ेगा।

वे चलते-चलते विधि-संकाय के पास से गुजरते हुए, रामजस कॉलेज के सामने आ खड़े हुए थे। रास्ते में अमिताभ और दो-तीन बार पूछ चुका था। अनुराधा बता देना चाह रही थी, पर अपनी आदत के अनुसार, असली बात न बताकर इधर-उधर की बातें करती जा रही थी। रामजस कॉलेज और दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स के बीच की सड़क पर आते ही वह ठिठक गई, "लो! मैं आज फिर भूल गई!"

"क्या भूल गईं?" अमिताभ इस अप्रत्याशित बात से कुछ खीझ-सा उठा।

"भई ! अब देखो, हम यहां तक आए हैं," अनुराधा बोली, "इस समय मिसेज़ शर्मा से भी मिलते चलते।"

"तो मिल लो न !" अमिताभ बोला, "मैंने कब मना किया है।"

"आज नहीं। मैं आज उनकी चीज़ें नहीं लायी।"

"न सही। अच्छा, अब यह बताओ, वह बात क्या है ?"

"वह बात !" अनुराधा एक क्षण रुकी, "बुरा मत मानना और कुछ पूछना भी मत !"

"नहीं पूछूंगा !"

"देखो," अनुराधा बहुत हौले से बोली, "तुम अब हमारे घर मत आना ! बाहर जहां कहोगे, जब कहोगे—मैं आ जाऊंगी। पर हम अब घर पर नहीं मिलेंगे।"

"क्यों ?" अमिताभ के मुख से अनायास ही निकल गया।

"तुमने कहा था, तुम कुछ नहीं पूछोगे !" अनुराधा ने याद दिलाया।

"हां-हां ! अच्छा, नहीं पूछता।"

दोनों कुछ देर तक चुपचाप चलते रहे।

"बुरा मान गए क्या ?"

"नहीं ! इसमें बुरा मानने की क्या बात है !" अमिताभ बोला।

अनुराधा ने उसके मुख की ओर देखा—चेहरे से वह चिंतित नहीं दीख रहा था।

अमिताभ के मस्तिष्क से एक बहुत बड़ा बोझ हट गया। इतने से समय में वह बहुत कुछ सोच गया था। अनुराधा ने जैसे ही बहुत उदास होकर कहा था कि उसे कुछ कहना है, तभी से उसके मस्तिष्क में अनुराधा की मौसी की बात बार-बार उभरकर आ रही थी।

अमिताभ ने अनुराधा की मौसी को एक ही बार देखा था, पर अनुराधा से सुना बहुत कुछ था। मौसी बहुत अमीर थी। उसकी कोयले की कुछ खानें थीं। उसके दोनों लड़के अमरीका में थे और बेटी किसी मंत्री के बेटे से ब्याही गई थी। पिछले दिनों मौसी ने अनुराधा के लिए बहुत सारे रिश्ते बताए थे। एक-से-एक बढ़कर लड़के : पढ़े-लिखे, अमीर मां-बाप के सुन्दर लड़के और अच्छी-से-अच्छी नौकरी पर लगे हुए।

अमिताभ मन-ही-मन इस मौसी से चिढ़ गया था और डरने भी लगा था। उन्हीं दिनों उसने बहुत सारे स्वप्न भी देखे थे कि एक चुड़ैल अनुराधा को उससे छीनकर लिये जा रही है। वह चीख रहा है, हाथ-पैर पटक रहा है, पर अपने स्थान से हिल नहीं पाता। और उसे चुड़ैल की शक्ल हर बार मौसी से मिलती-सी लगी थी।

अनुराधा ने अमिताभ की आशंकाओं का हमेशा मज़ाक उड़ाया था। उसका कहना था, मौसी अपने स्तर के रिश्ते बताती है। यह नहीं देखती कि अनुराधा के मां-बाप की हैसियत क्या है। और फिर, वह स्वयं वयस्क है। कोई बच्ची नहीं है कि मौसी जिससे चाहे उससे ब्याह दे।

चुपचाप चलते-चलते, काफी समय हो चुका था। अमिताभ ने नज़र उठाई, अनुराधा का मुख निर्विकार था। ऐसा नहीं लगता था कि निकट भविष्य में वह कुछ कहेगी। सुबह से जिस बात का घनत्व उसके मुख पर छाया था, कहकर उसका विरेचन हो गया था।

"वैसे, अब हम कहां तक जा रहे हैं?" मन के हल्केपन को जताने के लिए वह हंसकर बोला।

अनुराधा ने रुककर उसे देखा, "कनॉट-प्लेस चलें तो कैसा रहे! कुछ शॉपिंग कर लेंगे और कहीं बैठकर कॉफी भी पी लेंगे!"

अमिताभ चुपचाप चलता रहा। मल्कागंज के स्टैंड से उन्होंने एक स्कूटर-रिक्शा ले लिया।

कनॉट-प्लेस के बरामदों में घूमते हुए अमिताभ सोच रहा था—अब वह अनुराधा के घर नहीं जाएगा। फिर वे कहां मिलेंगे? बाहर बहुत ज़्यादा मिलना-जुलना उसे पसन्द नहीं था। पर यदि वे बाहर नहीं मिलेंगे तो कहां मिलेंगे? बिना मिले, रहने की बात सोच नहीं सकता। उसे लगा, कोई उसकी शक्ति को तौलना चाहता है।

वे हैंडलूम-हाउस के सामने से निकले तो अमिताभ रुक गया।

अनुराधा ने फिरकर प्रश्नवाचक दृष्टि से उसे देखा।

"अनु!" अमिताभ को अपना स्वर कांपता लगा।

अनुराधा एकदम पास आ गई।

"आज प्रेम में पहली बाधा आयी है।" अमिताभ बोला, "यह हमारे प्रेम की तीव्रता को तौलना चाहती है। मैं आज तुम्हें कुछ देना चाहता हूं।"

वह अनुराधा की बांह पकड़कर उसे हैंडलूम-हाउस के भीतर ले गया। उसे स्वयं लगा, वह बहुत रोमांटिक हो रहा है, पर उसने स्वयं को रोका नहीं।

अनुराधा ने एक सादी-सी चौड़े लाल बार्डर वाली सफेद सूती साड़ी पसन्द की।

हैंडलूम-हाउस से निकलकर वे काफी देर तक शामियाना कॉफी-हाउस में बैठे रहे।

अमिताभ लौटा तो उस पर काफी गहरा अवसाद घिर आया था। आज घर पर मिलने पर बंधन लगा है, कल किसी और बात से भी रोका जा सकता है। अब अनुराधा से मिले बिना रहना सम्भव नहीं था। पर उसने ऐसा क्यों होने दिया? वह इतना कमज़ोर ही क्यों बना? वह अपने-आपको टटोल रहा था।

जब विवाह की बात शुरू हुई थी, वह अनुराधा को जानता भी नहीं था। इस बातचीत के बीच में बहुत सारे रिश्तेदार थे।

पर अब उसे याद भी नहीं है, कब औपचारिक बातचीत रोमांस में बदल गई। यह नहीं लगता था कि अमिताभ कभी इस घर में अनुराधा को बड़े औपचारिक ढंग से देखने आया होगा या उसे उस रूप में बुलाया गया होगा। अमिताभ और अनुराधा एक-दूसरे की अपनी ही पसन्द लगते थे।

वे दोनों साथ घूमने जाते रहे। कई पिक्चरें उन्होंने इकट्ठे देखीं। अमिताभ टिकटें खरीदकर पिक्चर-हॉल से टेलीफोन कर देता था। यदि घर का कोई बड़ा भी फोन उठाता तो वह कह देता कि वह पिक्चर-हॉल से बोल रहा है, टिकटें उसने खरीद ली हैं। वे अनुराधा को भेज दें। अनुराधा हर बार आती रही। कभी किसी ने आपत्ति की मुद्रा नहीं दिखाई। उन्होंने कई बार बाहर साथ-साथ डिनर खाया और फिर स्थिति यह हो गई कि

अमिताभ शाम को दफ्तर से छूटते ही अनुराधा के घर चला जाता। शाम की चाय वहीं पीता। उसे बुलाने की आवश्यकता नहीं थी। न वह कहकर जाता। सबको पता था, वह शाम को आएगा। जिस दिन न जाता, उस दिन अवश्य यह पूछ हो जाती कि वह क्यों नहीं आया। अब, जब अनुराधा के साथ इतना बंध चुका है, यह वर्जन उसे समझ नहीं आया।

अलग होते हुए अमिताभ के ध्यान में यह बात थी कि अगली बार मिलने का समय और स्थान अभी तय नहीं हुआ है। पर वह मौन रहा। अनुराधा ने मना किया है तो वही क्यों नहीं बताती, वह उसे कब और कहां मिलेगी। मिलने को उसी का मन नहीं चाहता, अनुराधा भी व्याकुलता से उसकी प्रतीक्षा करती है। फिर वही क्यों पहल नहीं करती ?

पर अनुराधा ने इस विषय में कोई बात नहीं की। हैंडलूम-हाउस से निकलकर वह साड़ी को निहारने में लगी हुई थी। कई बार अनजाने ही उसने साड़ी के पैकेट को अपने गालों से लगाया था, वक्ष के साथ ज़ोरों से भींच लिया था।

उसी मग्नता में अनुराधा चली गई थी और अगली भेंट का कुछ निश्चित नहीं हो पाया था।

अमिताभ के मस्तिष्क की नसें तड़कने लगी थीं और उसे अपना दिल डूबता-सा लगा।

सवेरे उठा तो उदासी उसकी आत्मा के साथ चिपक गई थी। लगा, उसके शरीर में इंजेक्शन की सिरिंज डालकर उसकी सारी ऊर्जा निचोड़ ली गई है। बिस्तर से हिलने तक को मन नहीं चाहा। पर दफ्तर तो जाना ही था। दफ्तर जाएगा, काम में उलझा रहेगा तो अनुराधा को भूला रहेगा और तबीयत संभली रहेगी। कमरे में पड़े-पड़े तो तबीयत और घबराएगी।

नाश्ता करके तैयार होते-होते तक उसका विचार बदल गया था। वह पहले यूनिवर्सिटी जाएगा—उसने तय कर लिया था—फिर दफ्तर जाएगा। दफ्तर के लिए देर हो जाएगी, पर वह यूनिवर्सिटी अवश्य जाएगा। वह अनुराधा से शाम को मिलने का समय और स्थान नियत कर लेगा। वह जानता था, अनुराधा रोज़ सवेरे घंटे-डेढ़ घंटे के लिए लायब्रेरी ज़रूर जाती

थी। वह दस बजे वहां पहुंचती थी और अमिताभ को साढ़े नौ बजे दफ्तर में अपनी सीट पर होना चाहिए था। काफी देर हो जाएगी, पर वह उससे मिलने जाएगा!

ठीक दस बजे अनुराधा उसे यूनिवर्सिटी-लायब्रेरी में मिल गई।

"तुम आ गए!" अनुराधा बोली, "मैं सोच रही थी, तुम्हें कहां कंटैक्ट करूं। अभी न मिलते तो शाम को तुम्हारे कमरे में मैं ज़रूर आती। तुम दफ्तर नहीं गए?"

"दफ्तर!" अमिताभ हंसा, "जाऊंगा अभी।"

"दस तो बज गए।"

"हां।"

"बंधन कितना कठिन लग रहा है न?" अनुराधा उदास थी।

"हां, अनु!" अमिताभ जल्दी से बोला, "बताओ, शाम को कहां मिलोगी?"

"शाम को?" अनुराधा ने एक मिनट के लिए सोचा, "दफ्तर से सीधे वेंगर्स आ जाना। बाकी वहीं सोच लेंगे।"

"ओ० के०," अमिताभ बोला, "मैं चलूं फिर। देर हो रही है।"

वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये लायब्रेरी से बाहर निकल आया। उसे काफी हल्का लग रहा था। स्नायुओं का बोझ कम हो चुका था। अब वह दफ्तर का काम कर सकता था।

अमिताभ दफ्तर से छूटते ही वेंगर्स पहुंचा। बस की प्रतीक्षा उसने नहीं की। पार्लियामेंट स्ट्रीट से वेंगर्स दूर ही कितना था। दस मिनट में पैदल पहुंचा जा सकता था और बस शायद मिलती ही आधे घंटे में।

अनुराधा कोने की मेज़ पर अकेली बैठी थी। उसने अभी तक आर्डर नहीं दिया था—या अभी-अभी ही आयी थी।

अमिताभ हाथ की दो-एक पत्रिकाएं मेज पर रखकर, कुर्सी पर पसर कर, आराम से बैठ गया। अनुराधा ने आंखें उठाकर उसे देखा और हल्के से मुस्कराई।

"यूनिवर्सिटी से सीधी आयी हो?"

"नहीं!" अनुराधा बोली, "यूनिवर्सिटी मैं यह साड़ी पहनकर गयी

थी क्या ?"

उसने कल खरीदी हुई लाल बार्डर वाली सफेद साड़ी पहन रखी थी।

"घर से होकर आयी हो ?"

"हां।" अनुराधा बोली, "घर से होकर आयी हूं। साड़ी बदलकर आयी हूं, और लड़कर आयी हूं।"

"लड़कर ?"

"हां।" अनुराधा ने बताया, "मैंने यह साड़ी पहनी तो सबकी आंखें खुल गयीं। पूछा, 'यह साड़ी कहां से ली ?' मैंने बता दिया। मैं कोई डरती हूं किसी से ! मम्मी ने बहुत डांटा। बोलीं, 'हम इतने गए-बीते हैं कि तुम अमिताभ से साड़ियां ले-लेकर पहनो। शादी के बाद जो चाहे, लेती रहना, अभी कुछ मत लो।' उन्होंने कहा है, यह साड़ी तुम्हें वापस कर दूं। पर मैं कैसे कर सकती हूं ? मैंने कह दिया है कि वापस नहीं करूंगी और बता दिया कि इसे पहनकर तुम्हीं से मिलने जा रही हूं।'

"तो घर से बाहर की पहली भेंट पर ही झगड़ा-वगड़ा आरम्भ हो गया ?" अमिताभ मुसकराया।

"झगड़े-वगड़े तो होंगे ही। आखिर उन्होंने ऐसी स्थिति···अच्छा, छोड़ो !" उसने बात बदली, "क्या खिला रहे हो ?"

दोनों ने मटन-कटलेट और दो-दो स्लाइस खाए। कॉफी पी और बिल चुकाकर बाहर आए।

"पिक्चर देखें, अनु ?" अमिताभ ने पूछा।

"देर हो जाएगी, अमि ! मैं इतनी देर के लिए घर पर कहकर नहीं आयी।"

"पर वह कोई ज़रूरी तो नहीं है।"

"अच्छा, चलो।"

हॉल में घंटा-भर अनुराधा ठीक रही, फिर अमिताभ को लगा कि उसका मन नहीं लग रहा, वह अनमनी-सी होती जा रही है। उसने कई बार धीरे से पूछा, पर वह टाल गयी।

बाहर निकल, अमिताभ ने पूछा, "कैसी लगी ?"

"भई, सच यह है," अनुराधा का स्वर उत्साहशून्य था, "मैं एन्जॉय

नहीं कर सकी। घर पर कहकर नहीं आयी थी। बिना बताए देर तक बाहर रहने की मुझे आदत नहीं है, इसलिए मन नहीं लग रहा था।"

"चलो," अमिताभ को उसकी स्थिति का एहसास हुआ, "मैं तुम्हें टैक्सी पर घर छोड़ आऊं।"

अनुराधा ने मना नहीं किया। वे स्टैंड तक आए।

"एक बात पूछूं, अमि?" टैक्सी चलने पर अनुराधा बोली।

"हूं।" अनुराधा का अनमना हो जाना अमिताभ को अच्छा नहीं लग रहा था।

"आज तुम्हारे कितने पैसे खर्च हुए?"

"पांच वैंगर्स में, साढ़े सात पिक्चर में और···।"

"पांच के लगभग टैक्सी में!" अनुराधा बोली, "तुम्हें नहीं लगता अमि! कि ऐसे मिलना बड़ा महंगा पड़ता है?"

"तो क्या हो गया?" अमिताभ निश्चिन्तता से बोला, "कभी-कभार खर्च हो जाएं तो क्या है?"

"कभी-कभार हो जाएं तो कोई बात नहीं, पर हमें तो रोज़ इसी प्रकार मिलना पड़ेगा और रोज़ इतना खर्च···"

"ऐसा करो।" अमिताभ बोला, "कल छुट्टी है। लंच के बाद तुम ओडियन के स्टॉप पर मिल जाओ। कुतुब चले चलेंगे। वहां बहुत जगह है घूमने को। समय मज़े में बीत जाएगा और खर्च भी नहीं होगा।"

"ठीक है।" अनुराधा बोली और फिर चुप हो गयी।

अमिताभ देख रहा था, अनुराधा के मुख की तनी रेखाएं ढीली नहीं हो रहीं। वह उसी प्रकार तनी बैठी थी।

"क्या बात है, अनु? योजना पसंद नहीं आयी?" उसने पूछा।

"नहीं, वह बात नहीं है।" अनुराधा रोषभरे स्वर में बोली, "मैं इस प्रकार मिलना नहीं चाहती। हम अच्छे-भले घर में बैठे रहते थे। पर अब···" वह रुकी, "मुझे अपने घरवालों पर गुस्सा आ रहा है, जिन्होंने हमें घर से निकालकर, इस प्रकार मिलने पर मजबूर किया है।"

अमिताभ कुछ नहीं बोला। उसे भी लग रहा था, इस प्रकार बाहर-बाहर मिलना दोनों के लिए ही स्वाभाविक नहीं था। घर पर मिलकर,

एक प्रकार का उल्लास उसके मन में भर जाता था; उसका अब कहीं पता नहीं है। अनुराधा भी कितनी बदल गयी है। पहले वह मिलने उसके घर जाता था। बातों-ही-बातों में देर हो जाती थी। वह उठना चाहता तो अनुराधा उसे कितने आग्रह से ठहरने के लिए कहती थी। अब अनुराधा जल्दी-से-जल्दी भागकर घर पहुंचना चाहती थी। एक मिनट भी रुकना नहीं चाहती। जब तक उसके साथ होती है, उसके साथ होने का उल्लास भी उसके मन में नहीं होता, क्योंकि यह साथ होना भी एक मजबूरी है।

उसे लगा, न केवल अनुराधा के मन में अपने घरवालों के प्रति रोष है, वरन् वह भी धीरे-धीरे अपने मन में वही कुछ संचित कर रहा है। इस प्रकार यदि वे अपने मन में रोष संचित करते रहे तो वे व्यर्थ ही उनसे एकदम अलग-थलग हो जाएंगे। विवाह के बाद भी ये सम्बन्ध सहज नहीं हो पाएंगे और उसे यही लगेगा कि उसने अनुराधा के साथ विवाह नहीं किया, उसे भगाकर लाया है।

यह वह नहीं चाहता था। ऐसा क्यों हो, जब अनुराधा के डैडी ने स्वयं उसे चुना था। जो कुछ हुआ था और हो रहा था, उसमें उनकी सहमति थी। फिर इस खिचाव का लाभ ?

अमिताभ ने टैक्सी रुकवाकर अनुराधा को उसके घर के पास सड़क पर ही उतार दिया और कल के कार्यक्रम की याद दिला दी। कोई और समय होता तो वह टैक्सी वहीं छोड़ देता और उसके साथ घर जाता। सबसे मिलता और शायद खाना भी वहीं खाता।

आज वह टैक्सी से नहीं उतरा। भीतर से ही 'वेव' करके विदाई ले ली।

अनुराधा ने भी रुकने-रुकवाने का कोई चाव नहीं दिखाया। एक बार हाथ हिलाया और मुड़कर चली गयी।

दूसरे दिन अनुराधा अमिताभ से मिली तो बहुत क्षुब्ध थी।

"फिर झगड़ा हुआ ?" अमिताभ ने मज़ाक किया।

"हां !" वह बोली, "पर अभी मत पूछना। कुतुब पहुंचकर बताऊंगी।"

बस में इतनी अधिक भीड़ थी कि न वे इकट्ठे बैठ सके, न कोई बात

ही हो सकी। घंटा-डेढ़ घंटा दोनों अलग-अलग सीटों पर बैठे रहे। एक ही बस में होने के कारण सामीप्य का अहसास भर था।

कुतुब पर बस रुकी तो वे उतरे। छुट्टी का दिन था। ढेरों लोग दिन बिताने के विचार से आए हुए थे। कहीं भी एकांत नहीं था। वे कहीं ठहरे नहीं। चलते गए।

"क्या बात हुई, अनु ?" अमिताभ ने फिर पूछा।

"वह···बात तो कोई खास नहीं है।" अनुराधा ने कहा, "विनीता को कहीं जाना था। उसे मेरी लाल बार्डर वाली साड़ी भा गयी है। उसने मुझसे पहनने के लिए वह साड़ी मांगी। मैंने इनकार कर दिया। मैंने किसी चीज़ के लिए उसे कभी मना नहीं किया। पर यह तुम्हारा उपहार है, प्रेम का प्रतीक है। मैं कैसे सह सकती हूं कि इसे कोई और पहने, चाहे वह मेरी अपनी ही बहन हो!"

"फिर ?"

"फिर क्या!" अनुराधा ने कहा, "विनीता आगे से तीखी पड़ी तो मैंने डांट दिया और वह रोने लगी। उसे रोते देख मम्मी नाराज़ हो गयीं और मुझे साड़ी दे देने को कहा। मैंने फिर इनकार कर दिया। जानते हो, उन्होंने क्या कहा। उन्होंने कहा, 'बड़ी तो कीमती साड़ी है, जैसे यही पहन कर फेरे लेगी। पच्चीस रुपये की साड़ी नहीं है।' मैंने भी कह दिया, 'अब तो चाहे कुछ भी हो, मैं इसी साड़ी में फेरे लूंगी।' ठीक है न! तुम्हें कोई एतराज तो नहीं होगा ?"

अमिताभ अचकचा गया। उसने नहीं सोचा था, अनुराधा इतनी बड़ी बात कर जाएगी और उससे भी वचन चाहेगी। "पर, अनु! यह साड़ी तो सफेद है।" वह बोला, "फेरे तो लाल साड़ी में लिये जाते हैं।"

"वह सब मैं नहीं जानती।" अनुराधा बोली, "मैं तो इसी साड़ी में फेरे लूंगी। लाल रंग शुभ माना गया है, इसलिए सब लोग पहनते हैं। इसमें भी लाल बार्डर है। और जब मैं इसे ही शुभ मानती हूं तो किसी को क्या आपत्ति! तुम्हें कोई आपत्ति हो तो अभी बता दो।"

अमिताभ आपत्ति करने का साहस न कर सका। अनुराधा उसी से उलझ पड़ी तो? अनुराधा उस साड़ी को इतना बड़ा मान देना चाहती है

तो यह अमिताभ का भी सम्मान था ।

"तो रानीजी फेरों के लिए बहुत व्याकुल हैं ?" उसने बात टालने की चेष्टा की ।

अनुराधा में अपेक्षित प्रतिक्रिया नहीं हुई । वह उसी प्रकार गम्भीर रही, बल्कि कुछ और दृढ़ होकर बोली, "हां, अमि ! बहुत थक गयी हूं अब, मेरे अपने ! तुमसे परायों की तरह कुछ देर तक मिलकर संतोष नहीं होता । सोचती हूं—अब दोनों साथ-साथ रहें, चौबीसों घंटे । वह शादी के बाद ही हो सकता है ।"

अमिताभ भी गम्भीर हो गया । बोला, "खासकर, कल से मैं भी सोचने लगा हूं, अनु ! कि अब शादी टालने का कोई अर्थ नहीं है । घर से दूर सबसे छिपकर, थोड़ी देर के लिए मिलना बहुत कष्टप्रद है ।"

कुतुब में वे अधिक नहीं ठहरे । वहां लोगों के बीच बैठने में उन्हें संकोच होता था । वहां बैठने वाले सब ही बाल-बच्चों वाले थे । उनके बीच ऐसे जोड़े का बैठना, जो परस्पर विवाहित नहीं लगता था—दोनों में किसी को भी ठीक नहीं जंचा । एकांत खोजने के लिए कुतुब से कुछ दूर जंगल में जाना पड़ता । वह जोखिम का काम था ।

अमिताभ सोचता है, तो उसे लगता है कि उसके पश्चात् उनके जीवन में एक लम्बा अवकाश है । उस अवकाश में वे लोग तो नहीं मिले, या मिले तो अकेले नहीं और कोई काम की बात, जो पूछनी हो या कहनी हो, पूछकर या कहकर अलग हो गए । अब कमरे से काम नहीं चल सकता था, इसलिए अमिताभ को मकान खोजना था । घर का सामान बनाना था । शादी के कार्ड छपवाने थे । बरी का सामान खरीदना था । बरात के जाने के लिए बसों तथा अन्य चीज़ों का प्रबन्ध करना था । रिसेप्शन की पार्टी का प्रबन्ध करना था । फिर कार्ड बांटने थे इत्यादि । इन कामों में बहुधा अनुराधा उसके साथ थी । पर ये सारे कार्य एक जड़ स्वप्नावस्था से हुए थे । उन्हें अमिताभ अपने जीवन का अंग कैसे मान लेता ! वह तो एक और तरह का जीवन था, जिसमें अमिताभ अमिताभ नहीं था, अनुराधा अनुराधा नहीं थी । वे दो जड़ पुर्जे थे, जो एक संवेदनशून्य अवस्था में कुछ

निर्दिष्ट कार्य करते रहे···

उन दिनों अमिताभ कितना जूझा था अपने-आप से और अपने आस-पास से। कितनी ही जगहों से रगड़ खा-खाकर वह घिस गया था। उसकी अपनी तीखी रेखाओं का कहीं पता नहीं था। लगता था वह सारा-का-सारा भुरभुरा गया है। जहां कहीं किसी का हाथ लगता है, वहीं से तीखी रेखाएं घिसने लगती हैं और वह गोल, भद्दा और सामान्य होता जा रहा है। उसका अपना व्यक्तित्व कहीं खो गया था। कई वर्षों से उसने अपने व्यक्तित्व के जिन तीखे कोनों का निर्माण किया था, वे सब समाप्त हो गए थे। इस भुरभुराने में कहीं उसके किसी अपने सगे का अनुरोध था और कहीं अनुराधा के सगों का। उन अनुरोधों का विरोध वह नहीं कर पाया था, क्योंकि वह किसी को नाराज़ नहीं करना चाहता था···

ब्राह्मणों की बताई हुई शुभ तिथि में, सेहरा बांधकर, घोड़ी पर सवार हो, रोशनी और बाजे-गाजे लेकर वह अनुराधा के द्वार पहुंचा था। मिलनियां हुईं, सेहरा पढ़ा गया, जयमाला हुई और फिर खाना-पीना।

फेरों पर बैठते हुए अमिताभ को लगा, विनीता आज अनुराधा के साथ कुछ अतिरिक्त रूप में जुड़ी हुई थी। वह एक क्षण के लिए भी उससे अलग नहीं हुई। ज़रा-सा कपड़ा खिसकने पर उसे ठीक कर देती थी। अनुराधा को ज़रा हिलने भी नहीं देती थी। फेरे बहुत जल्दी समाप्त हुए और अनुराधा को भीतर ले जाकर वरी में दी गयी, विदा की गुलाबी साड़ी में बाहर लाया गया।

घर लौटते हुए कार में साथ बैठी अनुराधा अमिताभ को नयी-सी अनुराधा लगी। वह तो कोई और थी, जिसको उससे कोई लगाव नहीं था। वह पास बैठा और उसने नज़र उठाकर देखा तक न था। वह धीरे-धीरे उसे समझाता रहा और अनुराधा रोती रही। यह अनुराधा कोई और होगी—वह नहीं हो सकती, जिसने खुले रूप से उसे स्वीकारा था और उसे अपना कहने में कभी संकोच नहीं किया था···

एकान्त पाकर पुरानी अनुराधा लौटी। आंसू पोंछ डाले और मुसकराई।

"यहां आने का बहुत दुःख हुआ, अनु!" अमिताभ बोला, "रास्ते-

भर रोती रहीं।"

"रोना आ गया!" अनुराधा संकुचित होती-सी बोली, "यहां आने का दुःख तो नहीं है। आज सवेरे से घर में भूचाल आया हुआ था। तुम नहीं जानते अमि! वहां क्या हुआ।"

"क्या हुआ?"

"मैंने तुम्हारी दी हुई लाल बार्डर वाली सफेद साड़ी में ही फेरे लिये हैं, अमि!" अनुराधा बहुत भावुक स्वर में बोली, "उस पर उन्होंने एक दूसरी साड़ी लपेट ज़रूर दी थी, जिसे विनीता हर क्षण हटने से रोकती रही। मैं तुम्हारे प्यार में लिपटी यहां आयी हूं···एक वचन दोगे, अमि?"

"क्या?" अमिताभ हतप्रभ हुआ। आज की रात वह किसी वस्तु से इनकार नहीं कर सकता था।

"मैं जब न रहूं, अमि! तो मुझे इसी साड़ी में लपेटकर जलाना···"

"अनु!" अमिताभ ने उसे अपने कन्धे से लगा लिया, "आज ऐसी बातें न करो, अनु! मैं तुम्हारी भावना समझता हूं।"

अनुराधा काफी देर तक रोती रही और अमिताभ उसे समझाता रहा। अमिताभ को याद नहीं कि वे लोग कब सोए।

महीना-भर पहाड़ों पर घूमते हुए कैसे निकल गया, अमिताभ को मालूम नहीं हुआ। वापस दिल्ली आने पर उसे अपने भीतर एक नया ठहराव-सा लगा। वह सन्तुष्टि का भाव था। पहले की व्याकुलता कहीं खो गयी थी।

अनुराधा नये घर, नये वातावरण में आयी थी। उसकी उस पद की अपनी ज़िम्मेदारियां थीं। वह उनसे आच्छादित-सी हो गई थी। उसे अकसर कहीं-न-कहीं यह बात चुभ जाया करती थी कि वह अनुराधा के रूप में कुछ नहीं है, जो कुछ है अमिताभ की पत्नी के रूप में है। व्यक्तित्व का तिरोभाव उसे भला नहीं लगता था। पर जब कभी उसने अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व दिखाना चाहा, वह अमिताभ से टकरा गया।

उसने जीवन में पति को सहायक के रूप में चाहा था, जो उसके काम कर दिया करे। वह नहाने जाए तो उसके कपड़े अलमारी से निकाल

दिया करे। वह बाहर जाने के लिए तैयार हो तो भागकर उसकी साड़ी इस्त्री करवा लाया करे। अलमारी से उसके गहनों का सेट निकाल दिया करे। जब वह काम पर चली जाया करे तो पीछे से उसके उतारे हुए रात के कपड़े संभाल दिया करे। बिस्तर झाड़कर बेड-कवर बिछा दिया करे। ड्रेसिंग-टेबल पर खुली पड़ी तेल की शीशी बन्द कर ठीक जगह पर रख दिया करे। उसका पफ कम्पेक्ट-बॉक्स में डाल उसे बन्द कर दिया करे। कंघी में से बाल निकालकर, कंघी को ब्रश कर उसे ब्रश में लगा दिया करे। उसके गीले तौलिये को बाहर तार पर सुखा दिया करे और बिस्तर के सिरहाने पड़े चाय के कप और पानी के गिलास को रसोई में पहुंचा दिया करे। जब वह काम से लौटकर आए तो नीचे खड़े स्कूटर-रिक्शा को पैसे दे आया करे और ऊपर आते ही उसके सामने पानी का गिलास, चाय का कप, कुछ फल इत्यादि काटकर रख दिया करे। सोने से पहले बिस्तर पर से बेड-कवर हटा दिया करे और जब वह सो जाए तो उसे चादर ओढ़ा दिया करे।

पर अमिताभ ऐसा नहीं था। शादी से पहले वह जैसा भी हो, पर अब वह उसका पति था और पत्नी का सहायक बनने की जगह, पत्नी को अपनी सहायिका बनाना चाहता था। जिन बातों की अपेक्षा उसे अमिताभ से थी—उसने देखा था—उन्हीं बातों की अपेक्षा अमिताभ उससे करता था।

और फिर उन्हीं दिनों अनुराधा की तबीयत खराब रहने लगी थी। वह कुछ भी खा नहीं पा रही थी। जो खाती, उल्टी कर देती। हाथों-पैरों की सूजन बढ़ती जा रही थी। ब्लड-प्रेशर ऊंचा हो गया था। दो मिनट खड़ी रहती तो हांफने लगती। स्वभाव से भी बहुत चिड़चिड़ी हो रही थी। छोटी-सी बात पर लड़ पड़ती और फिर देर तक रोती रहती।

पिताजी का पत्र आया था कि अमिताभ बहू को इन दिनों दिल्ली में न रखकर घर पर छोड़ जाए ताकि उसकी देखभाल की जा सके। वह वहां अकेला है और उसे इस विषय में कोई अनुभव भी नहीं है। ऐसा न हो कि कोई गड़बड़ हो जाए।

पहले अमिताभ झिझका। वह अनुराधा के बिना रह सकेगा क्या?

जब अनुराधा ने घर पर आने से मना किया था और रोज़ मिलने की सम्भावना कुछ कम हो गयी थी तो उसका नर्वस-ब्रेकडाउन होने लगा था। अब अनुराधा को कई महीनों के लिए छोड़ना पड़ेगा। पर, साथ रहकर भी तो वे विशेष प्रसन्न नहीं थे। रोज़ ही कोई-न-कोई झगड़ा हो जाता था। उसने अनुराधा से बात की। उसे लगा कि अनुराधा भी चली जाना ही पसन्द करेगी।

अनुराधा कानपुर चली गई।

शुरू के दो-एक दिन वह बहुत खाली-खाली रहा। उसे कोई काम नहीं था। विवाह के बाद उसने अपने सारे बाहरी सूत्र समेट लिए थे। अब कोई ऐसा स्थान नहीं था, जहां वह अपना समय काट सकता।

उसे लगा, वह एक विशेष प्रकार के जीवन का आदी हो गया है। सवेरे उठकर दफ्तर, दफ्तर के पश्चात् घर। घर में पत्नी की उपस्थिति। घर का खाना। छुट्टियों में घर की झाड़-पोंछ। वह इतना पालतू हो चुका था कि उसके लिए बहुत देर तक बाहर रहना सम्भव नहीं था।

फिर उसका मानसिक तनाव बढ़ने लगा था। उसे लगा कि वह फिर उसी प्रकार खिंचा-तना रहने लगा है। फिर वह टंची होता जा रहा है। दिल की धड़कन फिर उसके कानों में सुनाई पड़ने लगी है और उसकी छाती में जलन रहने लगी है। कहीं फिर उसका नर्वस-ब्रेकडाउन तो नहीं हो रहा ?

अनुराधा का सप्ताह में एक-आध पत्र आ जाता। वह डॉक्टर के पास गयी थी। डॉक्टर ने क्या कहा था। उसके रक्त का फिर परीक्षण हुआ है। उसे बहुत सारी दवाइयां खानी पड़ रही हैं। वह दूध रोज़ पी रही है, अण्डा खा रही है, फल खा रही है। ये अनुराधा के उसके नाम पत्र नहीं थे—ये तो एक पत्नी की पति को दी गयी सूचनाएं थीं।

वह भी तो अनुराधा को याद नहीं करता। उसे भी अपनी पत्नी का अभाव खटकता है, जिसके बिना उसकी बहुत सारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। यदि उसकी पत्नी अनुराधा न हो कोई और होती तो क्या कोई अंतर होता ? तब भी वह उसे इतना ही प्यार करता। क्योंकि

हर पति को अपनी पत्नी से प्रेम करना चाहिए। यह उसकी भावना नहीं—घरेलू सुख-शांति के लिए उसका कर्तव्य था। वह बहुत दुर्बल व्यक्ति था—जिसने साहस के अभाव को आदर्शों की ओट दे रखी थी। वह शारीरिक आवश्यकताओं के लिए कहीं और नहीं जा सकता था, इसलिए बार-बार उसे अपनी पत्नी की याद आती थी। और पत्नी की जरूरत पड़ती थी, इसलिए उससे वह प्रेम करता था। जिससे उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी, वह उसी से प्रेम तो करेगा···

तो क्या वह अनुराधा से प्रेम नहीं करता? या अनुराधा उससे प्रेम नहीं करती? यह क्या सामाजिक और शारीरिक आवश्यकताओं के कारण किया गया एक समझौता मात्र है? उसे अनुराधा न मिलती या अनुराधा को वह न मिलता तो क्या कोई अन्तर न पड़ता? आज उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति कहीं और से होने लगे तो क्या उसे अनुराधा की कोई आवश्यकता न रहेगी? या अनुराधा की ही आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से कहीं अन्यत्र होने लगे तो अनुराधा उससे प्रेम नहीं करेगी? फिर उस लाल बार्डर वाली साड़ी का क्या होगा···

अमिताभ किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचना चाहता था। वह चाहता था कि किसी प्रकार दिन व्यतीत हो जाएं। अनुराधा यहां लौट आए। उसकी स्नायुओं का बोझ हल्का हो जाए और उसे यह सब सोचना ही न पड़े।

अनुराधा के आने में अभी बहुत देर थी। अभी उसे बहुत दिनों तक अकेले रहना था।

जितनी देर वह घर पर रहता उसका ध्यान बहुधा बाहर के द्वार की ओर लगा रहता। अकसर दरवाज़ा खटकता और वह जाकर खोलता तो वहां कोई न होता। उसे लगता, उसके कान उसकी अपनी इच्छा के कारण धोखा खाते हैं। वह चाहता है कि कोई आए। क्यों चाहता है? क्या इसलिए कि उसका समय कट जाए या···घर में वह अकेला है। इन दिनों नौकर भी नहीं है। वह निपट अकेला है। फिर वह किसकी प्रतीक्षा करता है? किसी विशेष व्यक्ति से मिलना हो तो वह उसके घर जाकर मिल सकता है। फिर वह किसकी प्रतीक्षा करता है इस निपट अकेले घर में···?

उस दिन दरवाज़ा खटकने पर उसने खोला तो एक अपरिचित लड़की को खड़े देखकर चौंका। उसने आंखों में प्रश्न भरकर पूछा, "कहिए !"

लड़की हकलाई, "आपको विम चाहिए ?"

"जी नहीं।"

"आप विम नहीं यूज़ करते ?" लड़की ने काफी प्रयत्न करके पूछा।

"करते हैं।" वह बोला, "पर अभी हमारे पास है।"

उसने ज़बर्दस्ती दरवाज़ा बन्द कर दिया।

लड़की इस व्यवसाय में नयी थी। काफी संकुचित हो रही थी। मुख कैसा लाल हो रहा था। पर वह स्वयं क्यों तप रहा है ? वह क्यों ज़बर्दस्ती दरवाज़ा बन्द कर चला आया ? किससे डर कर ? वह उस लड़की को किसी बहाने से घर के भीतर भी ला सकता था। यह अलग-थलग फ्लैट ! किसी को पता भी न चलता। वह घर में अकेला भी है एकदम···वह और अधिक तपता गया···लड़की एकदम सुन्दर नहीं थी। पर जवान तो थी। उसके द्वार पर आयी थी और घर में वह अकेला था। अपनी इच्छा से दरवाज़ा बन्द कर उसे लौटा आया है—फिर वह पछता क्यों रहा है ?

बुरी बात है, उसने सोचा—अनुराधा उसकी पत्नी है। वह उससे प्रेम करता है। वह और किसी के प्रति ऐसा व्यवहार नहीं रख सकता। उसे शर्म आनी चाहिए। अनुराधा सुनेगी तो क्या कहेगी। पर उसने अनुराधा के डर से नहीं, अपने ही डर से ऐसा किया था···और फिर यदि वह अनुराधा से प्रेम करता है तो अकेले घर में एक अपरिचित लड़की को अपने सम्मुख खड़े देख वह इस प्रकार तप क्यों उठा था···?

काफी लम्बी और तीव्र प्रतीक्षा के बाद उसे सूचना मिली, 'पुत्र के जन्म पर बधाई। बच्चे के विषय में बहुत सारी बातें मन में उभरीं पर सबसे ऊपर एक ही विचार था, अब वह अनुराधा को ले आएगा। बहुत दिन हो गए हैं, अब और रुकना उचित नहीं है। उसने हिसाब लगाया, इक्कीस दिनों तक सारी रीतियां समाप्त हो जाएंगी, बाईसवें दिन अनुराधा वहां से चल सकती है। पिताजी को पत्र लिखकर उसने सूचित कर दिया कि वह बाईसवें दिन अनुराधा को ले आएगा। वह उनकी टिकटें

बुक करवा दें। वह ठीक समय पर कानपुर पहुंच जाएगा।

बीच का अन्तराल उसने कैलेंडर की तारीखें काट-काट कर बिताया। कानपुर पहुंचकर वह अनुराधा और बच्चे से मिला। कोई असामान्य बात नहीं लगी। अनुराधा अन्य मांओं के ही समान बच्चे को छाती से लगाए दूध पिला रही थी। बच्चा चिपककर दूध पी रहा था। सामान्य-सा बच्चा था, जो कभी-कभी हंसता हुआ प्यारा भी लगता था और बहुधा रोता हुआ बदसूरत और घृणित भी लगता था।

अनुराधा इतने दिनों में काफी दुनियादारी सीख गयी थी। बच्चे के लिए खरीदी गयी नयी दरी, खेसियां, चादरें और उसकी फ्राकें इत्यादि उसने संभाल रखी थीं। बच्चा पुराने-फटे खेसों में ही पड़ा लिपटा रहता था। अभी बच्चा छोटा था इसलिए कपड़े बहुत गन्दे करता था। वह नहीं चाहती थी कि नये कपड़े खराब हों। इसलिए जो पुराने कपड़े यहीं छोड़ जाने थे, वह उन्हीं से काम चला रही थी। अन्य कपड़े वह दिल्ली में काम में लायेगी।

तैयारी पहले से हो चुकी थी। एक दिन वह वहां रुका भी, वह रास्ते की योजनाओं में बीत गया। रात-भर उन्हें गाड़ी में रहना था। बच्चे की तबीयत भी ठीक नहीं थी। वह बहुत टट्टियां कर रहा था। दवा साथ रख ली थी, पर वह कोई रामबाण तो थी नहीं। मां ने अनुराधा को रास्ते के लिए बहुत सारे निर्देश दिए। पिताजी ने अमिताभ को समझाया और वे घर से विदा हुए।

उनका कूपे आरक्षित था। तकलीफ कोई नहीं थी, पर गाड़ी के चलते ही हवा तेज़ और ठण्डी हो गयी थी। अनुराधा ने बच्चे को अच्छी तरह लपेट-लपाट दिया। अमिताभ ने उठकर सारी खिड़कियां बन्द कर दीं।

गाड़ी चल रही थी। कूपे में वे दोनों अकेले थे और कूपे की सारी खिड़कियां-दरवाज़े बन्द थे। अमिताभ का शरीर सहसा तप उठा। उसने अनुराधा का मुख अपने हाथों में ले लिया। अनुराधा में कोई प्रतिक्रिया न हुई। वह उसी प्रकार बुत बनी बैठी रही।

"उदास क्यों हो, अनु ?" अमिताभ ने अपने रक्त के आवेश को संयत करते हुए पूछा।

"इसकी तबीयत ठीक नहीं है।" अनुराधा ने बच्चे की ओर देखा।

"दिल्ली पहुंचकर ठीक हो जाएगा।" अमिताभ ने उसे आश्वासन दिया, "किसी अच्छे डॉक्टर को दिखा देंगे।"

वह अनुराधा से सटा बैठा था, पर उसे अपने शरीर के तपने का ही आभास था। अनुराधा में कोई परिवर्तन नहीं आया था।

बच्चे ने फिर टट्टी की थी। अनुराधा ने उसे उसी गन्दे नेपकिन ने साफ किया और धुला हुआ नेपकिन बांध दिया। वह गन्दे नेपकिन को तर्जनी और अंगूठे के नखों में लटकाए इधर-उधर ताकती रही।

"क्या है?" अमिताभ चाहता था, अनुराधा इस सबसे जल्दी-से-जल्दी निबट ले और वह अपना प्यार जताए।

"इसका क्या करूं?" अनुराधा ने नेपकिन की ओर आंखों से संकेत किया।

"जाओ, धो लाओ।"

"मुझसे नहीं होता।" अनुराधा ठुमककर बोली, "यह रातभर टट्टियां करता रहे और मैं उन्हें धोती रहूं।"

"तो फेंक दो!" अमिताभ का स्वर उत्तेजित था।

अनुराधा ने सिर उठाकर उसे देखा। उसकी दृष्टि में कोई भाव नहीं था। बोली, "इस प्रकार फेंकने लगी तो दिल्ली पहुंचते-पहुंचते इसके पास एक भी नेपकिन नहीं रहेगा।"

अमिताभ उसे घूरता रहा, "तो क्या करोगी?"

अनुराधा सोचती रही, फिर बोली, "इसे तो फेंक ही देती हूं।"

उसने खिड़की का पट थोड़ा-सा उठाकर नेपकिन बाहर फेंक दिया और मुड़ती हुई बोली, "इस ट्रंक को बर्थ के नीचे से बाहर खींचकर ज़रा खोल दो।"

"उसका क्या करना है अब?" अमिताभ अपनी खीझ रोक नहीं पा रहा था।

"कोई पुराना कपड़ा निकाल लूं।" अनुराधा बोली, "उसी को फाड़-फाड़कर काम चलाऊं। नेपकिन बनाती जाऊंगी और गन्दे होने पर फेंकती जाऊंगी।"

अमिताभ अनिच्छा से उठा और ट्रंक को बर्थ के नीचे से घसीटकर उसका ताला खोल दिया। कुण्डा पकड़कर ढक्कन उठाया और बोला, "लो, निकाल लो।"

अनुराधा ने कपड़ों को उलटा-पलटा। ऊपर-ऊपर ज़्यादातर उसकी शादी की रेशमी साड़ियां थीं। उन्हें निकाल-निकाल कर वह बर्थ पर ढेर लगाती गयी। और फिर उसने नीचे से एक लाल बार्डर वाली सफेद साड़ी निकाली। उसे उलट-पलटकर देखा और बोली, "यही ठीक रहेगी।" बाकी साड़ियां भीतर डालकर बक्स में बन्द कर दीं।

अमिताभ ने ध्यान से साड़ी देखी और उसका मन भीतर-ही-भीतर भुरभुरा गया। उसने कुछ कहा नहीं, चुपचाप एक-एक साड़ी उठाकर ट्रंक में पटकता गया। सारा सामान उसमें ठूंसकर उसमें ताला जड़ा और पैर की ठोकरों से उसे बर्थ के नीचे धकेल दिया।

उसने एक नज़र अनुराधा पर डाली। उसका ध्यान अमिताभ की ओर नहीं था। उसने साड़ी में से एक चौकोर टुकड़ा फाड़ लिया था। उसे दोहरा कर उसने तिकोन बनाया और नीचे के किनारे पर फाड़कर उसे बांधने का प्रबन्ध कर लिया। वह बड़ी मग्न होकर बच्चे को नेपकिन बांध रही थी।

अमिताभ ने गले की थूक निगली और चुपचाप ऊपरी बर्थ पर चला गया। उसे नीचे झांकने की हिम्मत नहीं हुई। रातभर वह साड़ी के फटने के स्वर और खिड़की का पट खोलकर नेपकिन बाहर फेंकने की आहट सुनता रहा। पर उसने अनुराधा से कोई बात नहीं की।

सवेरे अनुराधा ने ही उसे आवाज़ लगायी, "अब उठो भी। दिल्ली आ रही है।"

वह नीचे उतरा। अनुराधा से बिना आंखें मिलाए उसने चीज़ें समेटीं। अटैची-केस बन्द किया, बिस्तर बांधा और हाथ झाड़कर खड़ा हो गया।

"नीचे-ऊपर तो देख लो!" अनुराधा बोली, "कुछ छूटा तो नहीं?"

उसने पहले ऊपर की बर्थ को देखा जहां वह रात को लेटा हुआ था। वहां कुछ नहीं था। फिर नीचे की बर्थ के नीचे झांका। वहां कोई कपड़ा-सा

लटक रहा था। उसने हाथ बढ़ाकर कपड़ा खींच लिया। यह लाल बार्डर था—सफेद साड़ी शायद रातभर में टुकड़े-टुकड़े करके बाहर फेंकी जा चुकी थी।

अमिताभ ने दांत भींचकर बाएं हाथ से खिड़की का पट उठाया और दाएं हाथ से सफेद साड़ी का लाल बार्डर कहीं दूर फेंक दिया।

गाड़ी धीमी होती-होती दिल्ली जंक्शन के प्लेटफार्म नम्बर ग्यारह पर आकर रुक गई।

चारहान का जंगल

सन् 1935 की जुलाई की एक शाम।

वन-विभाग के रेंज ऑफिस में रेंज क्लर्क बालकराम अपना काम समेटकर अनमना-सा बैठा था। रेंज अफसर के दौरे पर होने के कारण उसका काम बहुत अधिक नहीं रह गया था। रेंज अफसर के दफ्तर में होने पर बालकराम अवकाश की बात सोच भी नहीं सकता था और आज वह खाली-खाली-सा बैठा बाहर की ओर देख रहा था।

बाहर की यह सड़क रावलपिंडी से कश्मीर चली जाती थी। बीच में यह स्थान था, घोड़ागली। इसका महत्त्व इतना ही था कि पंजाब के वन-विभाग के मरी क्षेत्र का यह केन्द्र था। समुद्र-तल से साढ़े पांच हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित यह स्थान, रावलपिंडी से केवल 32 मील की दूरी पर था।

बालकराम जब पहले-पहल यहां आया था, तब उसे यह स्थान काफी वीरान-सा लगा था किन्तु पिछले पांच वर्षों के जीवन में वह इस स्थान को पसन्द करने लगा था। उसका दफ्तर मुख्य सड़क से आधी फर्लांग ऊपर एक पहाड़ी पर था, जहां से नीचे चलते हुए इक्के-दुक्के व्यक्ति अथवा वाहन को देखा जा सकता था। दफ्तर के चारों ओर ऊंचे-ऊंचे चीड़ के वृक्ष घिरे हुए थे। यदि वह इतनी ऊंचाई पर न बना होता तो ये लम्बे-लम्बे वृक्ष वहां से कुछ भी देखने नहीं देते।

दफ्तर के साथ ही रेंज अफसर का क्वार्टर है। यह मकान पत्थर और लकड़ी का विचित्र सम्मिश्रण है। शायद इस सारे क्षेत्र में यही एक मकान आदमी के रहने योग्य कहा जा सकता है। इससे कुछ नीचे उतरकर सड़क से काफी इधर ही कुछ और क्वार्टर बने हुए हैं। ये रेंज दफ्तर के अन्य कर्मचारियों के लिए हैं। क्वार्टर काफी पुराने हैं, जो साल में

थोड़ी-सी मरम्मत के पश्चात् फिर से रहने योग्य बना लिये जाते हैं। इन्हीं क्वार्टरों में से एक क्वार्टर रेंज क्लर्क के लिए है, जिसमें स्वयं बालकराम तथा उसका परिवार रहता है। बालकराम ने अपना क्वार्टर भीतर से ठीक-ठाक करवा रखा है, अन्दर से सीमेंट का पलस्तर भी उसी ने करवा रखा है। उसके आसपास के क्वार्टरों में गार्ड तथा फारेस्टर रहते हैं।

बालकराम के क्वार्टर से जरा हटकर कुछ ऊंचाई पर लकड़ी की एक कॉटेज पिछले दिनों ही बनी है। यह डिवीज़नल अफसर के साथ आने वाले कैम्प क्लर्क के लिए है। डिवीज़नल अफसर साल में दो महीने के लिए दौरे पर आते हैं तो उनका अपना स्टाफ उनके साथ आता है।

आजकल डिवीज़नल अफसर जान डेविड यहीं आये हुए हैं। एक तो बड़ा अफसर और फिर अंग्रेज़। सारे क्षेत्र पर उसके रोब के कारण स्तब्धता-सी छायी रहती है।

बालकराम वैसे तो रेंज क्लर्क ही है, पर यहां क्लर्क भी बहुत बड़ा आदमी होता है। साहब तो कभी-कभी बीच में आते हैं, नहीं तो वहां का सबसे बड़ा आदमी क्लर्क ही होता है। बालकराम ने कभी भी स्वयं को इतना महत्त्वहीन नहीं पाया था। यह सब शायद जान डेविड के कैम्प क्लर्क अरशद हुसैन के कारण ही था।

अरशद हुसैन···सवेरे से ही अरशद हुसैन बालकराम के मन पर छाया हुआ था। वैसे उसका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि किसी के मन पर छा जाना उसके लिए कठिन नहीं था। लम्बा-ऊंचा जवान, भूरे-भूरे लम्बे बाल और भूरी दाढ़ी···अरशद हुसैन कट्टर धार्मिक मुसलमान था।

पर आज सवेरे से वह तीन बार बालकराम के पास आ चुका था। कई बार उसने कोई बात आरम्भ की थी, पर फिर टालकर चला गया था। बातें तो वह कई करता रहा था, पर बालकराम समझता था कि असली बात वह अभी तक कर नहीं पाया था।

उसका काम समाप्त हो गया था और उसका अपना अफसर भी यहां नहीं था, उसे अब तक घर चला जाना चाहिए था। अफसर यहां होता तो भी समय की कोई कैद नहीं थी। बालकराम रेंज क्लर्क था और

इस रेंज का सारा काम उसे ही करना था, चाहे दफ्तर में बैठकर करे या घर पर करे। वास्तव में उसके दफ्तर और घर में कोई अन्तर नहीं था। वह दफ्तर में भी सरकार का ही काम करता था और घर पर भी। बहुत बार सोचने पर उसे घर तथा दफ्तर में एक ही अन्तर सूझता था। उसके दफ्तर में उसकी पत्नी दयावन्ती नहीं आ सकती थी। मुसलमानों की बस्ती थी और किसी भले घर की स्त्री बाहर नहीं निकलती थी, वे सब परदे में रहती थीं। बाहर खुले-मुंह घूमती नजर आने वाली स्त्री या तो मजदूर होती थी अथवा वेश्या···

पर अपनी पत्नी या घर के विषय में बालकराम कुछ भी सोच नहीं पा रहा था। उसके मन पर अरशद हुसैन छाया हुआ था। आखिर वह क्या कहना चाहता था। सुबह से इतनी बार प्रयत्न करने पर भी वह क्यों अपनी बात कह नहीं पाया। और फिर बालकराम और उसमें केवल सामान्य शिष्टाचार की बातचीत थी, कोई मैत्री नहीं थी कि बालकराम यह समझता कि वह उसके साथ अपनी कोई घरेलू बात करना चाहता है। आखिर वह क्या बात है, जो वह कहना चाहता है और कह कहीं पा रहा···

सहसा बालकराम को लगा कि वह केवल अरशद हुसैन के कारण अब तक घर नहीं गया है। वह अब भी अरशद हुसैन के आने की प्रतीक्षा कर रहा है। वह समझता है कि अरशद हुसैन अवश्य ही अपनी बात कहने आएगा और जब तक वह अपनी बात पूरी तरह से कह नहीं लेगा, वह इसी प्रकार चक्कर लगाता रहेगा। यदि वह अपनी बात कहने पर मजबूर न होता तो वह इतने चक्कर कभी नहीं लगाता···अरशद हुसैन अवश्य आएगा और अपनी बात पूरी कहकर जाएगा···

बालकराम को अपने दफ्तर से बाहर किसी के आने की आहट हुई। इस समय सिवाय अरशद हुसैन के और कोई नहीं हो सकता—बालकराम जानता था।

थोड़ी देर में दरवाजे पर अरशद हुसैन का लम्बा-तड़ंगा शरीर दिखाई पड़ा।

"आइए, जनाब !" इस बार बालकराम ने ही पहल की।

अरशद आकर उसके पास खड़ा हो गया।

"तशरीफ रखिए !" बालकराम उसके मुख की ओर देखता रहा।

"नहीं, बैठने की कोई बात नहीं है," अरशद बड़े उखड़े-से स्वर में बोला, "अपने दफ्तर में दिल नहीं लग रहा था, सोचा, लालाजी से दो बातें ही कर आएं।"

वह काफी प्रयत्न करके हंसा।

पर अब इस प्रकार निभाना बालकराम के बस का नहीं था। वह अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। बांह पकड़कर अरशद को उसने साथ वाली कुर्सी पर जबर्दस्ती बैठा लिया। अरशद के बैठ जाने पर वह घूमकर उसके सामने आकर खड़ा हो गया।

"मियां अरशद ! तुम आज तक कभी केवल दिल न लगने के कारण लालाजी से बात करने नहीं आए थे। आज तुम चार चक्कर लगा चुके हो। बात तुमने कही नहीं है। पर तुम यह जानते हो कि मैं भी समझ रहा हूं कि तुम्हें कोई खास बात मुझसे कहनी है, जो तुम कह नहीं पा रहे हो और बार-बार अपने को रोककर भी रोक नहीं पा रहे हो।"

बालकराम सीधा अरशद की आंखों में देख रहा था।

अरशद अपनी हल्की-भूरी आंखों से थोड़ी देर उसे घूरता रहा। फिर पहलू बदलकर बोला, "बात सही है, लाला बालकराम !"

वह कुर्सी पर आराम से बैठ गया था। उसने अपना दायां पैर उठाकर बाएं पर रख लिया था। स्पष्ट ही अब वह केवल बालकराम के बैठा लेने के कारण, जाने के लिए उत्सुक अरशद नहीं था। पर कुछ बोलने के लिए वह अब भी तैयार नहीं था।

"क्या बात है, मियां अरशद हुसैन ?" बालकराम ने फिर पूछा।

अरशद उसे थोड़ी देर चुपचाप देखता रहा। फिर धीरे से बोला, "मैं अभी तक फैसला नहीं कर पाया हूं, लाला बालकराम, कि तुम पर भरोसा किया भी जा सकता है या नहीं।"

उसका मुंह लाल हो गया था। इतनी स्पष्ट बात करने के लिए उसे काफी प्रयत्न करना पड़ा था, पर बातचीत आरम्भ करने के लिए वह काफी बड़ी मंज़िल तय कर आया था।

बालकराम ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप उसे देखता रहा। पर जब अरशद ने बात आगे नहीं बढ़ायी तब बालकराम को कहना ही पड़ा, "उसका फैसला तुम्हें स्वयं ही करना पड़ेगा। भरोसे के मामले में कोई भी अपनी सिफारिश नहीं कर सकता।"

पर बालकराम समझता था कि यह बात कहने की अरशद को आवश्यकता क्यों पड़ी। बात बड़ी नाजुक थी। अरशद पक्का, कट्टर मुसलमान था और बालकराम हिन्दू।

"मैं अपने खुदा की बात मानता हूं," आखिर में अरशद स्वयं ही बोला, "मैं तुम पर भरोसा करता हूं। और तुमने धोखा दिया ही, तो फिर अल्लाह ताला की मर्जी..."

बालकराम को लगा कि अब उसे कुछ कहना ही चाहिए, "मियां अरशद हुसैन! जब बात इतनी खुलकर हो रही है तब मेरा विचार है कि मैं भी एक बात कह दूं कि भरोसा किसी के मजहब पर नहीं किया जाता, भरोसा हमेशा आदमी पर किया जाता है।"

"खुदा की कसम, तुमने सही कहा है," अरशद अब काफी खुल चुका था, "बात यह है कि रेंज अफसर सैयद पीर अली शाह आज यहां नहीं हैं..."

"इस बात को मुझसे बेहतर और कौन जानता है," बालकराम ने कहा, "वह मेरे अफसर हैं।"

बालकराम को पहले से ही यह खटका था कि बात उसी के अफसर से सम्बद्ध है। उसका अनुमान ठीक ही था।

"और तुम यह भी जानते हो," अरशद कह रहा था, "सैयद साहब निहायत शरीफ आदमी हैं। अपने मातहतों पर वह जान देते हैं और सब की पूरी मदद करते हैं..."

"यह सब मुझे बताने की आवश्यकता नहीं, मियां अरशद हुसैन!" बालकराम बोला, "मैं एक बार फिर कहूंगा कि इस बात को मुझसे बेहतर कौन जानता है। तुम तो उन्हें दूर से ही जानते हो। मैंने तो उनके साथ इतने साल काम किया है। तुम मानोगे कि वह मुझे बिल्कुल अपने ही बच्चों के समान प्यार करते हैं और मुझे भी अपने ही परिवार का एक

सदस्य मानते हैं। मैं जो अब तक यहां टिका हुआ हूं, यह सैयद साहब की ही मेहरबानी के कारण। तुम शायद नहीं समझ पाओगे कि मेरे मन में उनके लिए कितनी इज्जत है।"

"मैं तुम्हारी बात का पूरा यकीन करता हूं, लाला बालकराम!" अरशद ने कहा, "मैंने उनके साथ काम तो नहीं किया। पर तुम जानते हो, इस्लाम के लिए मेरे दिल में क्या है और सैयद साहब पांचों समय बाकायदा नमाज़ पढ़ते हैं। एक भी रोज़े का नागा नहीं करते। रमजान के महीने में सारा दिन कुरान की तलावत करते हैं। घंटों इबादत करते हैं। खुदातरस आदमी हैं। हर किसी से नेकी करना उन्होंने अपनी आदत बना रखी है।"

"सही है, मियां साहब!" बालकराम काफी बेसब्री से बोला, "अब तुम अपनी बात कहो।"

"बात यह है···" और बात कहते-कहते अरशद फिर एक बार रुक गया। वह अपनी जगह से उठा और दरवाज़े तक बिना किसी आहट के चला गया। उसने झांककर आसपास देखा···

"इस समय यहां परिन्दा भी पर नहीं फटकता।" बालकराम ने उसकी बात समझकर कहा।

"सही है!" अरशद बोला, "पर मैं अपने दफ्तर की एक राज़ की बात कहने जा रहा हूं। इसलिए एहतियात बहुत ज़रूरी है।"

"बोलो।" बालकराम ने कहा।

"आज सवेरे-ही-सवेरे कुछ लोग मेरे अंग्रेज़ साहब जान डेविड से मिलने आये थे। मेरा खयाल है कि वे लोग कल रात से ही यहां पहुंचे हुए थे। वे लोग आज सवेरे साहब से मिले। उन्होंने बहुत छिपाकर साहब से बात की है, पर साहब की यह खूबी है कि वह मुझसे कुछ नहीं छिपाता। उनके जाने के बाद उसने मुझसे सब कुछ कह दिया।"

"कौन लोग थे?" बालकराम से पूछे बिना न रहा गया।

"पोशाक से वे बहुत गंवार लग रहे थे। काफी गरीब और पिछड़े किस्म के लोग। और जब ऐसे लोग चपरासी और क्लर्क को छोड़कर सीधे डिवीज़नल अफसर से बात करने की हिम्मत करें तो जानते हो,

मतलब क्या होता है ?'' अरशद रुक गया।

"मतलब होता है, किसी की मुसीबत।" बालकराम बड़ी मुश्किल से मुसकराया।

"तुम ठीक कहते हो!" अरशद फिर बोला, "उनके जाने के बाद साहब ने मुझे सारा किस्सा सुनाया। उन्होंने बताया कि वे लोग चारहान गांव से आए थे। उन्होंने साहब को बताया कि चारहान के जंगल का ठेका इस बार ठेकेदार राजा सुलेमान खां को दिया गया है। और यह ठेका तुम्हारे रेंज अफसर सैयद पीर अली शाह की मर्जी और सिफारिश पर दिया गया है। अब उस ठेकेदार राजा सुलेमान खां ने यह समझकर कि रेंज अफसर मुझ पर मेहरबान है ही, जंगल में से बहुत-से ऐसे पेड़ काट लिये हैं, जिन्हें काटने का उसे कोई हक नहीं था। इस तरह से अंग्रेज़ सरकार का बहुत सारा नुकसान उस मुसलमान ठेकेदार के हाथों हुआ है और रेंज अफसर भी चूंकि मुसलमान है इसलिए उसने यह सब कुछ करने दिया है। और हमारे डिवीज़नल अफसर जान डेविड का अंग्रेज़ रक्त खौल रहा है। वह देसी आदमियों की ऐसी गुस्ताखी नहीं सह सकता।"

अरशद चुप हो गया। बालकराम उसे देखता रहा। पर जब अरशद ने और कुछ बोलने का प्रयत्न नहीं किया, तब बालकराम को ही बोलना पड़ा।

"साहब के पास क्या सबूत है कि चारहान के जंगल में अनुचित रूप से पेड़ काटे गये हैं और सरकारी सम्पत्ति का नुकसान किया गया है ?"

"साहब कल सवेरे ही मौके पर जा रहे हैं," अरशद बोला, "वे लोग उसे वहां मिलेंगे और मौके पर ही दिखाएंगे कि कितना नुकसान किया गया है।"

"मौके पर दिखाने वाले कौन लोग हैं ?" बालकराम ने पूछा।

"यह मैं नहीं जानता," अरशद ने उत्तर दिया, "मैं तो एक ही बात जानता हूं कि हमारे सैयद साहब पर कोई हर्फ नहीं आना चाहिए।"

फिर वहां मौन छा गया। दोनों चुपचाप एक-दूसरे को देखते रहे। बालकराम जब अरशद की आंखों में और न घूर सका तब अपनी जगह से उठकर दरवाज़े तक चला गया। दरवाज़े की बगल में लगी अलमारी

को खोलकर लालटेन जलायी। प्रकाश को प्रणाम किया और पूछा, "तुम अब क्या करना चाहते हो ?"

"मैं चाहता हूं कि किसी भी तरह सैयद साहब को रातोंरात इस बात की खबर मिलनी चाहिए, ताकि वे जो कुछ करना चाहें, अपने बचाव के लिए कर लें।"

"पर···" बालकराम हकला गया, "पर यह कैसे सम्भव है ? सैयद पीर अली शाह यहां तो हैं नहीं। वह दौरे पर भूरवन गये हुए हैं। तुम जानते हो कि भूरवन पहुंचना आसान नहीं है। पन्द्रह मील तो मेन रोड पर जाना होगा। वह तो फिर भी मोटर से जाया जा सकता है, पर उसके बाद पांच मील जंगल के बीचोबीच पगडंडी पर जाना होगा। वहां तो पैदल ही पहुंचा जा सकता है। यहां रात हो रही है। थोड़ी देर में एकदम अंधेरा हो जाएगा। पहाड़ की रात। ठंड बढ़ जाएगी। सांय-सांय जंगल बोलेगा। ऐसी हालत में कैसे जाया जा सकता है। उनका चपरासी भी उनके साथ ही गया हुआ है, नहीं तो उसे ही साथ भेज देते। और डाक-रनर डाक लेकर भी जा चुका है···"

"तभी तो सुबह से तुम्हें कहता-कहता तीन बार रुक गया था," अरशद ने बड़े कटु स्वर में कहा, "मैं इसलिए तुम्हारे पास नहीं आया था कि तुम मुझसे पूछो कि कैसे पहुंचा जा सकता है। मैं तो एक ही बात जानता हूं कि सैयद साहब को इस बात की सूचना रातोंरात मिलनी चाहिए। तुम मेरे साथ चलते हो तो चलो, नहीं तो मैं अकेला ही जाऊंगा···"

बालकराम जानता था कि अरशद झूठ नहीं बोल रहा है। वह सचमुच किसी भी प्रकार अकेला ही चल पड़ेगा। वह सैयद साहब के पास पहुंचेगा कि नहीं, यह बालकराम नहीं जानता। वह सैयद साहब को सावधान कर पाएगा कि नहीं, यह दूसरी बात है। पर वह प्रयत्न अवश्य करेगा और इस प्रयत्न की सूचना सैयद साहब को अवश्य मिलेगी। तब क्या होगा···अरशद का उनके साथ क्या सम्बन्ध है। अरशद सैयद साहब के दफ्तर में नहीं है। वह डिवीज़नल अफसर जान डेविड का कैम्प क्लर्क है और बालकराम रेंज क्लर्क है। सैयद साहब के मातहत काम करने वाला

उनका अपना क्लर्क। जब इस सारी बात का पता सैयद साहब को लगेगा कि एक अंग्रेज़ अफसर के कैम्प क्लर्क ने उनको बचाने का कितना बड़ा दुस्साहस किया और उनके अपने क्लर्क ने सब कुछ जानते हुए भी कुछ नहीं किया तो उसका क्या होगा ?

अरशद बहुत बड़ा जोखिम उठा रहा था। पहाड़ों की रात। अंधेरे रास्ते। सुनसान सांय-सांय करता जंगल। रात को जंगल में कुछ भी हो सकता था। अंधेरे में पहाड़ पर से लुढ़ककर आदमी किसी खड्ड में गिर सकता था, साथ-साथ बहते दरिया जेहलम के पेट में समा सकता था···और फिर अरशद अंग्रेज़ सरकार के एक अंग्रेज़ अफसर का भेद बताने जा रहा था। उसका विरोध कर रहा था। उसे धोखा दे रहा था और बालकराम? ···बालकराम कुछ नहीं कर रहा था। जब यह सब सैयद साहब को मालूम होगा तो वह क्या सोचेंगे···अरशद के साथ उनका सम्बन्ध क्या है···यही तो कि वह भी मुसलमान है। बालकराम ने कुछ नहीं किया, क्योंकि वह हिन्दू है···बालकराम की नौकरी का क्या होगा···नौकरी तो नौकरी···हो सकता है जंगल में बीट पर आए किसी गार्ड को उसकी लाश मिले। आस-पास की सारी आबादी मुसलमान थी। उसके लिए किसी भी रूप में मुसलमान-विरोधी समझा जाना घातक हो सकता था···

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा," उसने अन्त में अरशद हुसैन से कहा।

बालकराम और अरशद हुसैन, दोनों ही सड़क से बचकर, पगडंडी-पगडंडी चल रहे थे। सड़क पर जाना ठीक नहीं था। रास्ते में कोई भी मिल सकता था और ऐसे क्षेत्र में कोई भी मिलने वाला अपरिचित नहीं होगा। यदि अपरिचित हुआ तो और भी पूछताछ करेगा। तुम कौन हो, कहां जा रहे हो—ये तो बड़े सामान्य से प्रश्न थे, जो किसी से भी पूछे जा सकते थे।

"मियां अरशद हुसैन, तुमने बहुत बड़ा जोखिम उठाया है।" बालकराम ने बड़े धीरे से फुसफुसाकर कहा।

"मैं समझता हूं, साहब को मालूम नहीं हो पाएगा कि मैं हेड क्वार्टर छोड़कर कहीं गया था।" वह अपने में सहमा हुआ बोला।

"मालूम होना तो नहीं चाहिए।" बालकराम ने अपने-आप को भी

तसल्ली दी, "इसीलिए तो मैं तुम्हें जंगल के बीच में से लेकर चल रहा हूं। सड़क पर कोई न भी मिलता तो भी साहब के बंगले में से ही किसी की नज़र हम पर पड़ सकती थी। सालों ने सड़क इतनी नीची और बंगला इतना ऊंचा बनाया है कि क्या कहें।"

अरशद का पैर एक झाड़ी में उलझ गया था। उसने अपना पैर बिना आवाज़ किए निकाला और बोला, "हम अंधेरे में कहीं भटक न जाएं, चीड़ के इन पत्तों ने पगडंडी को भी छिपा दिया है।"

"डरो मत, मियां!" बालकराम हंसा, "इस बलबूते पर जोखिम के काम नहीं होते।"

अरशद चलते-चलते रुक गया। उसने भरपूर नज़र बालकराम पर डाली, "लाला, तुम समझते हो, मैं डर गया हूं?"

बालकराम के मन में कहीं अजाने ही भय समा गया है। अरशद का शरीर उसके सामने था। वह पेशे से कैम्प क्लर्क था, पर जिस डील-डौल तथा स्वभाव का वह व्यक्ति था, उसके लिए एक-आध आदमी की गर्दन मरोड़ देना कोई बड़ी बात नहीं थी। इन जंगलों में हत्या होना कोई बहुत अप्रत्याशित भी नहीं था। रोज़ ही कहीं-न-कहीं, कुछ-न-कुछ होता रहता था। लकड़ी की चोरी करते हुए पकड़े जाने पर चार-आठ आने के जुर्माने से बचने के लिए यहां के लोग गार्ड या सिपाही को मार डालना बहुत सरल समझते थे। और फिर यह कभी पता नहीं चलता था कि हत्या किसने की है।

और आज बालकराम सबसे छिपकर बिना किसी को बताये अरशद के साथ उस स्थान पर आया था, जो आबादी से बहुत दूर था, जहां किसी के भटककर आ निकलने की भी कोई सम्भावना नहीं थी···उसने यह गलत काम किया था···

सहसा वे दोनों ही रुक गए···किसी के पैरों की ध्वनि थी, जो बहुत तेज़ी से उनकी ओर बढ़ रही थी···

"कौन होगा?" अरशद ने बहुत धीमे से पूछा।

"डरो मत!" बालकराम ने कहा, "कोई राहगीर हो सकता है···या फिर कोई जानवर भी हो सकता है, हो सकता है, कोई जानवर ही हो।

आवाज़ दो पैरों की नहीं है, बहुत हल्की है और आदमी की चाल से काफी तेज़ है…"

आवाज़ सहसा रुकी, जैसे उसने भी इन लोगों की आहट पायी हो और फिर टोह लेकर एकदम उल्टी दिशा में भागी।

"जानवर था।" बालकराम ने कहा, "गीदड़ होगा। इस ओर बड़ा जानवर नहीं होता। साफ गीदड़ के पैरों की आवाज़ है। घबराहट के मारे मैं पहले समझ नहीं सका।"

उसने अपने माथे से पसीना पोंछा और एक लम्बी सांस ली।

"साहब हमारे पीछे आदमी तो नहीं भेजेगा?" अरशद की सांस अभी तक ठीक नहीं हुई थी।

"क्या कहा जा सकता है।" बालकराम बोला।

वे फिर चल पड़े।

इस बार वे लोग और अधिक सतर्कता से चल रहे थे। पर पैरों के नीचे गिरे चीड़ के पत्ते काफी खटका कर रहे थे और जंगल इतना स्तब्ध हो चुका था कि वह आवाज़ भी काफी लगती थी।

"और कितनी दूर है?" अरशद ने पूछा।

"तुम अब पछता तो नहीं रहे?" बालकराम से पूछे बिना न रहा गया।

पर पूछकर वह फिर पछताया। अरशद की आंखों में जो खीज उसने देखी थी, वह उसके लिए बहुत शुभ नहीं हो सकती थी।

उसने अपने-आप और अरशद दोनों को सुनाया, "बस, आधी फर्लांग और फिर हम नीचे उतरकर मुख्य सड़क ले लेंगे और वहीं बांसरागली चुंगी की वह चौकी है, जहां से मेरी स्टैण्ड पर फोन करके हम टैक्सी मंगवा सकते हैं। पर…"

उसने अपना अधूरा वाक्य स्वयं ही पूरा किया, "यह सड़क बड़ी तंग है। इसलिए अंधेरा होने के बाद सामान्य टैक्सी को चलने की इजाज़त नहीं है। उस समय ज़्यादातर बैलगाड़ियां सामान ही ढोती हैं। रात में चलने का लाइसेन्स बहुत कम टैक्सियों के पास होता है। यदि कोई ऐसी टैक्सी न

मिली फिर तो हम कभी भी नहीं जा सकते और फिर साहब को ज़रा-सा भी शक पड़ा तो नाइटपास वाली सारी टैक्सियों से पूछताछ कर हमारा पता लगा सकता है। वैसी टैक्सियां हैं ही कितनी···"

अरशद चुपचाप उसे देखता रहा।

बालकराम चलते-चलते थोड़ा-सा रुका। अरशद हुसैन जाने कब कुछ पीछे रह गया था।

"मियां साहब ! यहां से हमें नीचे उतरना है। हम बांसरागली आ पहुंचे हैं।" बालकराम ने कहा।

दोनों ने रुककर नीचे जाने के मार्ग का निरीक्षण किया। वास्तव में रास्ता कोई नहीं था। जहां वे लोग खड़े थे, वहां से एक पेड़ कभी जड़सहित उखड़कर गिर गया था, जिससे एक पगडंडी-सी बन गयी थी। ढलती शाम के धुंधलके में बड़ा हल्का-सा आभास उस पगडंडी का मिल रहा था। पर वहां एकदम खड़ी उतराई थी। कोई बीस फुट नीचे जाकर दस फुट चौड़ी सड़क होगी और सड़क के एकदम साथ खड्ड, कोई डेढ़ सौ फुट नीचे।

इस उतराई को धीरे-धीरे उतरना सम्भव नहीं था। या तो किसी चीज़ से रस्सी बांधकर उतरा जा सकता था, या फिर फिसलते हुए नीचे जाना पड़ता था। पर फिसलते हुए नीचे जाकर यदि सड़क पर रुका न जा सके तो फिर आदमी जाकर खड्ड में ही रुक सकता था।

दोनों ने एक-दूसरे को देखा, कौन पहल करे ?

"मियां साहब, संभलकर !" बालकराम ने कहा और बिना पीछे देखे नीचे उतर गया।

एक झटके में ही बालकराम आधे रास्ते में एक झाड़ी से जा टकराया। उसने झाड़ी को पकड़कर स्वयं को रोका। सांस ठीक करने के लिए मुड़कर पीछे देखा तो अरशद हुसैन लुढ़कता नज़र आया। बालकराम ने आंखें बन्द कीं और कसकर झाड़ी को पकड़ लिया। क्षणभर में अरशद हुसैन उससे आ टकराया। अरशद ने उसे कसकर पकड़ लिया। उसका सांस उखड़ा हुआ था।

बालकराम हंसा, "मियां अरशद हुसैन ! मैंने इस झाड़ी को मज़बूती से न पकड़ा होता और यह झाड़ी इतनी मज़बूत न होती तो जैसे तुम आए

हो, वैसे हम दोनों ही नीचे की खड्ड में गले मिल रहे होते।"

अरशद लज्जित-सी हंसी हंसा, "मैं नहीं जानता था लालाजी कि यह स्थान इतना टेढ़ा है।"

"मेरा विचार है," बालकराम ने कहा, "कि आगे का थोड़ा-सा रास्ता हम बैठकर या घिसटकर उतर जाएं। यदि हमने बाकी का रास्ता भी वैसे ही तय किया, जैसे कि अब तक किया है, तो हम दोनों में से एक भी नहीं बचेगा।"

अरशद ने कुछ नहीं कहा। वह बालकराम के पहल करने की प्रतीक्षा करता रहा।

बालकराम झाड़ियों को पकड़-पकड़कर घिसटता-घिसटता नीचे की ओर जा रहा था। उसने एक बार भी पीछे मुड़कर देखने का प्रयत्न नहीं किया, पर वह अरशद के घिसटने की आवाज़ बराबर अपने पीछे सुनता रहा। उसकी आंखें नीचे की ओर लगी हुई थीं और कान अपने पीछे आते हुए अरशद के घिसटने पर।

कुछ ही क्षणों में दोनों सही-सलामत नीचे पहुंच गए। दोनों ने अपने कपड़े झाड़े और एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्कराये।

"ख़ुदा का शुक्र है।" अरशद ने लम्बी सांस ली।

बांसरागली की चुंगी उनसे कुछ ही दूरी पर थी। वहां जाने में अब कोई कठिनाई नहीं थी।

"अब नाइटपास वाली टैक्सी मिल जाए तब सही।" बालकराम ने कहा।

"जब ख़ुदा ने यहां तक पहुंचाया है तब वह आगे भी मदद करेगा।" अरशद बोला।

वे लोग चुंगी के दरवाज़े पर आ चुके थे।

सड़क के एक किनारे पर हवा में लटकी-सी एक कॉटेज थी। दो कमरों की। सड़क के बीचोबीच एक सिपाही बन्दूक लिये खड़ा था।

सिपाही ने उन्हें कुछ नहीं कहा और वे दोनों चुंगी के दफ्तर के भीतर चले गए। शाम का समय था। केवल एक ही व्यक्ति मेज़ के पीछे बैठा हुआ था। उसके सामने एक स्टूल पर एक और व्यक्ति इनकी ओर पीठ

किए बैठा था।

मेज़ की दूसरी ओर बैठे व्यक्ति ने आंखों-ही-आंखों में उनसे प्रश्न किया। स्पष्टत: वह जानना चाहता था कि वे लोग क्या करने आए हैं। शाम के इस समय लोग यहां कम ही आते थे या फिर वे लोग आते थे, जिन्हें सिपाही पकड़कर लाता था। पर इनके साथ कोई सिपाही भी नहीं था और शक्ल और कपड़ों से भी वे वैसे लोग नहीं लगते थे, जैसे लोग बहुधा यहां आया करते थे। अपनी कमीज़, सलवार और शमले वाली पगड़ी से तो वे उसी के समान अधिक लग रहे थे।

उस व्यक्ति की आंखों में प्रश्न देखकर इनकी ओर पीठ किए स्टूल पर बैठा हुआ आदमी इनकी ओर मुड़ा।

बालकराम के पैर वहीं चिपक गए।

"अरे, लालाजी, आप ?" वह व्यक्ति बोला।

"हां, भई !" लाला बालकराम ने अपने को बहुत संभालकर कहा, "तुम यहां कैसे ?"

"शेख साहब अपने पुराने दोस्त हैं।" उस व्यक्ति ने मेज़ की दूसरी ओर बैठे क्लर्क की ओर संकेत किया, "इन्हीं से मिलने चला आया था।"

"यह तो बहुत अच्छा हुआ कि तुम यहां मिल गए।" बालकराम ने सायास प्रसन्नता दिखाई, "अब हमारा काम और आसान हो जाएगा। हमें नाइटपास वाली एक टैक्सी तो मंगवा दो।"

"कहां जा रहे हैं आप लोग इस वक्त ?" चुंगी का क्लर्क पहली बार बोला, "आमतौर पर इस वक्त कोई बाहर नहीं निकलता।"

"मियां अरशद हुसैन के साले बीमार हैं।" बालकराम ने अरशद की ओर इशारा कर दिया, "उन्हें देखने के लिए भूरवन जाना इसी समय बहुत ज़रूरी है।"

बालकराम और अरशद हुसैन के उड़े हुए रंग देखकर और बीमारी की खबर सुनकर शेख साहब ने ज़्यादा कुछ नहीं पूछा। दूसरा व्यक्ति भी चुप हो रहा। इस समय नाइटपास वाली टैक्सी लेकर भूरवन किसी बीमार का देखने जाने का अर्थ स्पष्ट था कि वह व्यक्ति अपनी अन्तिम घड़ियां गिन रहा है। ऐसे समय अधिक पूछताछ कैसे की जा सकती है।

शेख साहब ने चुपचाप मेरी टैक्सी स्टैण्ड को टेलीफोन कर दिया जो वहां से कोई आठ मील की दूरी पर था।

"टैक्सी चल पड़ी है।" उन्होंने रिसीवर रखते हुए कहा।

बालकराम की जान में जान आयी। उसे बार-बार यही लग रहा था कि कहीं कोई टक्सी न मिली तो बहुत मुश्किल होगी। और फिर कहीं ज़्यादा बातचीत हुई तो उनका भेद भी खुल सकता था।

टैक्सी को आने में बीस मिनट से आधा घण्टा तक लग सकता था, यही समय सबसे अधिक कठिन समय था। इस समय में बातचीत तो होगी ही। हो सकता है कि इन दोनों में से कोई पूछ बैठे कि अरशद का साला भूरवन में क्या करता है। उसका नाम पूछ बैठे। और भी पचासों प्रश्न हो सकते हैं। और यह भी हो सकता है कि उन दोनों में से कोई भूरवन के विषय में ज़्यादा जानकारी रखता हो।

पर टैक्सी आने तक वैसी कोई बात हुई नहीं।

बाहर से सिपाही ने आकर खबर दी कि टैक्सी आ गयी है। उन्होंने अभिवादन किया और बाहर चले आए। दूसरा आदमी उन्हें छोड़ने के लिए उनके साथ बाहर तक आया।

"लालाजी, आप जा तो रहे हैं···अच्छा जाइये।" उसने अपनी बात बदल दी, "अच्छा, मैं टैक्सी का नम्बर तो लिख लूं, अगर कभी किसी प्रकार की सूचना ही देनी पड़ी।" उसने अपनी डायरी निकालकर टैक्सी का नम्बर लिख लिया।

लाला बालकराम और अरशद हुसैन ने उससे हाथ मिलाया और टैक्सी में जा बैठे। दरवाज़ा बन्द करते हुए वह व्यक्ति बोला, "रेंज अफसर साहब के क्या हाल हैं? मिलने पर सैयद साहब को मेरा सलाम कहिएगा।"

बालकराम कुछ नहीं बोले। उनका तालू सूख रहा था। वह फटी-फटी आंखों से देखते रहे और टैक्सी चल पड़ी।

अरशद हुसैन ने अब तक एक शब्द भी नहीं कहा था। वह टैक्सी चलने पर पहली बार बोला, "यह कौन था?"

"फारेस्ट गार्ड अता हुसैन।" बालकराम ने कहा। फिर दोनों ही चुप

रह गए।

'उसने टैक्सी का नम्बर क्यों लिखा'—बालकराम सोच रहा था—'क्या इसलिए कि कहीं यदि कोई दुर्घटना हो जाए तो वह सूचना दे सके या···या वह समझ रहा था कि बात क्या है ? क्या उन दोनों के चेहरों से यह बात प्रकट हो गयी थी कि वे लोग चोरी से रात को कहीं जा रहे हैं···· और इस सारी मुलाकात में सैयद साहब की चर्चा नहीं हुई और ऐन टैक्सी के चलते-चलते उसने सैयद साहब को सलाम कहा। क्या वह जानता है कि सैयद साहब इस समय भूरवन में हैं ? क्या वह जतलाना चाहता था कि वह सब कुछ जानता है ?···या वह सब यों ही संयोगवश हो गया ? वह उनकी सुरक्षा के लिए भी टैक्सी का नम्बर लिख सकता है। वह सैयद साहब के मातहत रह चुका है। अब वह अपने पुराने अफसर को उसके रेंज क्लर्क के माध्यम से सलाम कहला रहा है तो इसमें बुरा क्या है ?···'

बालकराम सोचता रहा, पर वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाया।

टैक्सी अपने रास्ते पर बढ़ती जा रही थी। उन्हें ढलान के रास्ते पर चलना था। अंधेरा पूरी तरह घिर आया था। हवा में भी खुश्की आ गयी थी। टैक्सी मोड़-पर-मोड़ पार करती हुई जा रही थी और बालकराम को कुछ भी पता नहीं था। उसके मस्तिष्क पर अता हुसैन छाया हुआ था। अता हुसैन ने यदि इस बात की सूचना दे दी तो बालकराम के साथ बहुत बुरा होगा। तब उसे बचाने के लिए कोई भी सामने नहीं आएगा।

अरशद हुसैन ने भी तब से कोई बात नहीं की थी। वह बालकराम से भी अधिक गुमसुम बैठा था। बालकराम ने उसे छेड़ना उचित नहीं समझा।

दूर कहीं जेहलम के इठलाते हुए चलने का धीमा-धीमा स्वर आ रहा था और चीड़ के साथ-साथ यहां दूसरे पेड़ भी मिलने लगे थे। चीड़ की सांय-सांय अपने-आपमें काफी भयावनी थी। ऊपर से रपटीली सड़क के मोड़-पर-मोड़···

अचानक टैक्सी को झटके के साथ ब्रेक लगी···चीं-इ-इ करती हुई टैक्सी मोड़ पर सड़क के किनारे की चट्टान के साथ लगकर खड़ी हो गयी।

सामने एक बैलगाड़ी लकड़ियों से भरी खड़ी थी।

टैक्सी-ड्राइवर और गाड़ीवान में झगड़ा आरम्भ हो गया था। वे लोग एक-दूसरे को काफी भारी-भरकम गालियां दे रहे थे और हाथापाई की नौबत आती दीख रही थी।

बालकराम चौंककर उठ बैठे। यदि कहीं हाथापाई आरंभ हो गयी तो उन दोनों में से एक का नीचे बहते दरिया जेहलम में गिर पड़ना बड़ी मामूली-सी बात थी। लड़ते हुए दोनों ही लुढ़कते-पुढ़कते दरिया की गोद में जा सकते थे। यदि उन दोनों में से एक भी गिरा तो हत्या का मामला बन जाएगा और मौके पर उपस्थित थे दो सरकारी आदमी—बालकराम और अरशद हुसैन। फिर क्या होगा ? वे कचहरियां भुगतते रहेंगे। सारी बात खुल जाएगी और जिस बात से वे शाम से डर रहे थे, वह सामने होगी।···और कहीं गाड़ीवान तगड़ा निकला और टैक्सी-ड्राइवर दरिया में जा पड़ा तो उनकी टैक्सी वहीं-की-वहीं रह जाएगी। भूरवन अभी लगभग आठ मील दूर था···

बालकराम और अरशद हुसैन दोनों ही बाहर निकल आए।

"देखिए, जनाब ! ये सूर का बच्चा गाड़ी के आगे लालटेन लगाकर नहीं चलता। खुद तो जहन्नुम रसीद होगा ही और भी किसी को मारेगा। मैंने ठीक वक्त पर ब्रेक न लगाई होती तो हम सब जेहलम की गोद में होते !" टैक्सी-ड्राइवर कह रहा था।

गाड़ीवान ने कुछ नहीं कहा। वह शायद यह समझ नहीं पा रहा था कि टैक्सी में से निकलने वाले ये कौन लोग हैं।

"चल भई, माफ कर दे।" अरशद हुसैन टैक्सी वाले को मनाकर टैक्सी के पास ले गया।

बैलगाड़ी वाला भी अपनी गाड़ी एक सिरे पर ले गया और वे लोग फिर से चल पडे।

टैक्सी ने अधिक समय नहीं लिया। वे लोग आधे घण्टे के भीतर भूरवन तक आ गये थे। अब सैयद साहब तक पहुंचने के लिए दो-एक मील पैदल चलना था। सैयद साहब जहां ठहरे हुए थे, वह वन विभाग का अपना बंगला था और जंगल के भीतर बना हुआ था। पर रास्ता साफ था

और चांद की रोशनी में रास्ता देखने में कठिनाई नहीं थी।

टैक्सी वाले को वहां ठहरने के लिए कहकर वे दोनों ही चल पड़े। दोनों के कदम जल्दी-जल्दी उठ रहे थे। अब वे सैयद साहब के एकदम समीप आ चुके थे। और वे लोग उनको सूचना देकर अपना भार उतार सकते थे। उसके बाद सैयद साहब का अपना काम था। वह जो भी करना चाहते, कर सकते थे।

बंगले तक पहुंचने में उन्हें बीस मिनट और लगे होंगे। अहाते में घुसते हुए बालकराम ने कहा, "लो, काम पूरा हुआ, मियां अरशद हुसैन! और यह सब तुम्हारी मेहरबानी से हुआ।"

फाटक के खुलने की आवाज़ सुनकर अन्दर से सैयद साहब का चपरासी निकल आया।

"लालाजी, आप ?" उसने आश्चर्य से कहा।

"हां।" बालकराम बोले, "एक ज़रूरी काम है। सैयद साहब को सूचना दो कि हम आए हैं।"

"पर लालाजी···"

"क्या बात है ?" बालकराम ने कुछ तेज़ी के साथ पूछा।

"पर सैयद साहब तो यहां का काम समाप्त कर बड़े दफ्तर गये हुए हैं, लाहौर।" चपरासी ने कहा।

"लाहौर ?"

बालकराम और अरशद हुसैन एक-दूसरे की शक्ल देख रहे थे।

चपरासी ने बहुत कहा पर वे लोग वहां नहीं ठहरे। "बहुत ज़रूरी काम है।" कहकर वे दोनों वापस आ गए।

"अब ?" जंगल से बाहर निकलकर अरशद हुसैन ने पूछा।

"अब सैयद साहब तक यह सूचना किसी प्रकार भी नहीं पहुंचाई जा सकती और फिर न ही वह सुबह तक किसी प्रकार वापस ही लाये जा सकते हैं।" बालकराम ने कहा।

"फिर ?"

"कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा, भाई!" बालकराम बोले।

"करना तो चाहिए ही।" अरशद हुसैन ने कहा, "हमने इतना जोखिम उठाया और फिर भी काम न हो तो क्या फायदा! पर अब हम क्या कर सकते हैं?"

बालकराम के मन में भविष्य का कार्यक्रम बन रहा था। पर वह सोच रहा था कि क्या अरशद मान जाएगा? कहीं ऐसा तो नहीं कि इस्लाम के जोश में वहां से तो चल पड़ा कि एक मुसलमान भाई की सहायता करनी है, पर अब पछता रहा हो। किन्तु जितनी बार भी बालकराम ने पूछा था, उससे वह उतनी ही बार नाराज़ हुआ था और बालकराम उसे नाराज़ करना नहीं चाहता था।

"मैं समझता हूं," टैक्सी में बैठने के बाद बालकराम ने कहा, "कि सैयद साहब को तो अब सूचना दी ही नहीं जा सकती है। पर फिर भी उनकी सहायता तो हो ही सकती है।"

"कैसे?" अरशद हुसैन ने पूछा।

"इस समय स्थिति यह है कि वह नुकसान चारहान के जंगल में हुआ है। सुबह वहां डेविड साहब जायेंगे और जब वह जायेंगे, वहां न तो फारेस्ट गार्ड को पता होगा और न ही ब्लाक अफसर को। पर अगर ब्लाक अफसर को इस बात की सूचना कर दी जाए तो वह मौके पर स्वयं उपस्थित हो जाएगा और साहब के पहुंचने पर स्थिति को संभाल लेगा।"

"पर ब्लाक अफसर यदि न माना तो?" अरशद हुसैन ने शंका की।

"नहीं, ऐसी बात नहीं है।" बालकराम ने उत्तर दिया, "ब्लाक अफसर मुहम्मद रउफ को मैं अच्छी तरह जानता हूं। वह सैयद साहब की अवश्य सहायता करेगा।"

"तो वहीं चलो।" अन्त में अरशद हुसैन ने कहा।

टैक्सी अपने पुराने रास्ते पर वापस आ रही थी। इसी रास्ते से वे लोग अभी गए थे। इसलिए डर की कोई बात नहीं थी। अब यही लगता था कि किसी प्रकार जल्दी-से-जल्दी वे लोग ब्लाक हेडक्वार्टर पर पहुंच जाएं।

ब्लाक हेडक्वार्टर 'टोपा' बांसरागली से 20 मील दूर था और मेन रोड के साथ ही था। वहां तक पहुंचने में उन्हें विशेष कठिनाई नहीं थी।

बांसरागली तक वापस आकर उन्हें चढ़ाई की ओर चलना था। जैसे-जैसे सड़क ऊपर चढ़ती जाती थी, चीड़ के जंगल घने होते जा रहे थे और जब देवदार के पेड़ मिलने लगे तब बालकराम समझ गया कि वे लोग अब समुद्र-तल से आठ हज़ार फीट की ऊंचाई पर चल रहे हैं।

रात के नौ बज रहे थे, पर लगता था कि रात बहुत अधिक बीत गयी है। इस भाग-दौड़ में उन्हें पता ही नहीं था कि वे लोग कितना थक चुके हैं। अब धीरे-धीरे सिर भारी-सा होने लगा था।

बालकराम ने सुबह से दफ्तर में काम किया था। दोपहर को वह आराम कभी नहीं करता था। आराम उसे शाम को घर जाकर ही मिलता था। पर आज शाम को घर पर वह बहुत थोड़ी देर के लिए ही रुका था। ऐसे समय में आराम कहां से करता और वह भागा-दौड़ी में लगा हुआ था।

अरशद ने भी सिर पीछे की सीट से टिका रखा था। आंखें उसकी बन्द थीं। पता नहीं वह क्या सोच रहा था।

और बालकराम के मन पर नयी चिन्ता छा गयी थी। यदि मुहम्मद रउफ भी टोपा में नहीं मिला ?…

सैयद साहब का मिलना तो निश्चित था। यदि वह ही नहीं मिले तो मोहम्मद रउफ का ही क्या भरोसा…

साढ़े दस बजते-बजते टैक्सी ने उन्हें टोपा पहुंचा दिया।

ब्लाक अफसर का घर रात के इस समय भी खोजने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उन्होंने सीधे जाकर दरवाज़ा खटखटाया।

दरवाज़ा एक युवक ने खोला। बालकराम उसे पहचानता था। वह मुहम्मद रउफ का बड़ा बेटा था।

"आइए, चाचाजान!" सलाम करने के बाद युवक ने कहा, "आप इस वक्त कहां से? खैरियत तो है?"

"सब ठीक है।" बालकराम ने कहा, "एक जरूरी सरकारी काम से आया हूं। तुम्हारे अब्बा घर पर ही हैं या कहीं गये हुए हैं?"

"आप भीतर तो आइए।" युवक बोला, "अब्बा के बारे में भी बताता हूं।"

बालकराम और अरशद भीतर चले आए, पर बालकराम को कुछ

खटका हो गया था। जिस ढंग से युवक बात कर रहा था, उससे लगता था कि मुहम्मद रउफ घर पर नहीं था। पर हो सकता है कि कहीं आस-पास ही गया हो···

"बेटे ! हम बहुत ज़रूरी काम से आए हैं और समय हमारे पास एकदम नहीं है। तुम जल्दी से ज़रा रउफ साहब को भेज दो।" बालकराम ने कहा।

"बात यह है, चाचा जान !" युवक बड़े संकोच से बोला, "आप जानते हैं कि हमारे छोटे चाचा फगवाड़ी में रहते हैं। आज शाम को यह खबर मिली थी कि वह एक पहाड़ी से फिसलकर गिर गए हैं। उन्हें काफी चोट आयी है। अब्बाजान का वहां जाना बहुत ज़रूरी था। सो वह शाम को ही फगवाड़ी चले गये हैं। उनको पता होता कि आप आने वाले हैं तो शायद वह ऐसी हालत में भी नहीं जाते।"

"रउफ साहब छुट्टी लेकर गए हैं क्या ?" बालकराम ने पूछा।

"छुट्टी मंजूर करवाने का वक्त ही कहां था, चाचाजान ? वह तो ज़रूरी जाना पड़ा तो चले गए।" युवक ने कहा।

बालकराम एक और चिन्ता में पड़ गया। पहले तो सैयद साहब को ही बचाने की बात थी। अब तो मुसीबत रउफ के सिर भी पड़ेगी। साहब निरीक्षण पर आये और ब्लाक अफसर सिरे से बिना छुट्टी के गायब हो···उसका अब क्या होगा ?

दोनों मुंह लटकाये हुए घर से बाहर आये।

टैक्सी में बैठने तक कोई कुछ नहीं बोला। टैक्सी में बैठने पर भी दोनों चुप ही रहे।

"क्यों जनाब, वापस चलूं ?" टैक्सी वाले ने पूछा।

अब तो कोई निर्णय लेना ही था।

बालकराम ने अपने-आप को चेताया। रउफ के पास पहुंचना बहुत ज़रूरी था। क्यों न यहां से एक फारेस्ट गार्ड भी ले लिया जाए। वहां रउफ के घर तक पहुंचने में सुविधा होगी। वैसे भी अब उसमें चलने की और शक्ति नहीं रह गयी थी।

फारेस्ट गार्ड को साथ लेकर जब उन्होंने टैक्सी ड्राइवर को फगवाड़ी

चलने के लिए कहा, तब उसके मुख पर कोई उत्साह नज़र नहीं आया।

"जनाब, फगवाड़ी यहां से तीस मील है और फिर वहां से वापसी का सफर पचास मील का है। मेरे पास तो इतना पैट्रोल भी नहीं है। आगे आप मालिक हैं। जो कहेंगे, वही करूंगा," उसने उत्तर दिया।

पैट्रोल की समस्या विकट थी। रावलपिंडी से इधर कोई पैट्रोल पम्प है भी कि नहीं, बालकराम नहीं जानता था। पर बिना पैट्रोल के आगे जाया नहीं जा सकता था और जाना अवश्य ही था। बालकराम चिंता में पड़ गया।

"अब क्या होगा ?" अरशद ने पूछा।

बालकराम देख रहा था कि घोड़ागली से चलने के पहले अरशद हुसैन ने बहुत उत्साह दिखाया था। उत्साह क्या दिखाया था, उसी के कारण मजबूर होकर बालकराम को आना पड़ा था। पर घर से बाहर निकलते ही अरशद गुमसुम था, जैसे कोई बहुत बड़ी गलती कर बैठा हो। अब वह बालकराम पर आश्रित-सा चुपचाप चला जा रहा था।

"तुम चल पड़ो, भई !" बालकराम ने टैक्सी ड्राइवर से कहा, "सेहरबगला में कोई-न-कोई प्रबन्ध हो जाएगा।"

सेहरबगला टोपा से पांच मील की दूरी पर था। पर वहां पैट्रोल पम्प कोई न था। यह बालकराम निश्चित रूप से जानता था। पर फिर भी वहां पैट्रोल के मिल जाने की आशा थी। बालकराम ने किसी समय सुना था कि सेहरबगला में मिलिट्री की गाड़ियों के बहुत सारे ड्राइवर अपनी गाड़ियों का पैट्रोल निकालकर दुकानदारों के हाथों सस्ते भाव बेच जाया करते थे और अपनी आवश्यकता की चीज़ें खरीद ले जाया करते थे।

सेहरबगला पहुंचने में अधिक देर नहीं लगी। ड्राइवर ने बीच बाज़ार टैक्सी रोक दी। बालकराम उतरकर एक ओर चला गया। शेष सब लोग—अरशद हुसैन, ड्राइवर, क्लीनर तथा फारेस्ट गार्ड इनायत अली टैक्सी में ही बैठे रहे।

बालकराम ने एक दुकानदार से पैट्रोल के बारे में पूछा तो वह हंस पड़ा, "लालाजी, यहां कहां पैट्रोल खोज रहे हैं। यहां कहीं पैट्रोल पम्प है ही नहीं।"

बालकराम कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। फिर भेद-भरे स्वर में बोला, "काफी पैट्रोल चाहिए, मुंहमांगे दाम मिल जायेंगे। तुम सोच लो।"

दुकानदार फिर हंसा, "लालाजी, आप मज़ाक अच्छा कर लेते हैं। आप देख रहे हैं, यह नमक-तेल की दुकान है। यहां पैट्रोल कहां से मिल सकता है!"

"सोच लो!" बालकराम अपने स्थान से डिगा नहीं।

इस बार दुकानदार का रुख बदल गया। बोला, "हम आपको नाराज़ कर सकते हैं क्या, लालाजी? जाइए, बर्तन ले आइए।"

पैट्रोल भरवाकर वे लोग सेहरबगला से चल पड़े।

चांदनी निखर आयी थी। चीड़ के लम्बे-लम्बे वृक्ष भरसक चांदनी को रोकने का प्रयत्न कर रहे थे और चांदनी थी कि उनसे छन-छनकर चली आ रही थी। सड़क बहुत ऊंचाई पर थी। उससे ठीक सटकर दरिया जेहलम बह रहा था। यहां जेहलम सड़क से लगभग डेढ़ मील नीचे बह रहा था। दरिया के पानी के बहने का स्वर काफी तेज़ था। साथ ही पत्थरों के लुढ़कने का भी भान हो रहा था। कभी-कभी नज़र पड़ने पर क्रोध से झाग उगलता दरिया एक नज़र में अत्यन्त मनमोहक और दूसरी नज़र से महाकाल-सा भयंकर लगता था।

टैक्सी जैसे ही किसी मोड़ पर मुड़ती, बालकराम के मन में भय समा जाता। कहीं इसी मोड़ पर वे सब टैक्सी-समेत दरिया में न जा पड़ें। कभी-कभी बालकराम को लगता कि उसने इस क्षेत्र में इतना लम्बा सफर टैक्सी में करना स्वीकार करके गलत काम किया है।

और तभी टैक्सी धीरे होती-होती रुक गयी।

सब लोगों ने प्रश्नवाचक दृष्टि से ड्राइवर को देखा।

"अभी चलते हैं, जनाब," ड्राइवर ने कहा और अपनी जगह से उठ आया। उसके स्थान पर जब क्लीनर बैठा तब बात सबकी समझ में आयी।

"यह क्या कर रहे हो, भई," इस पर अरशद हुसैन ने कहा, "तुम हमें फगवाड़ी पहुंचा रहे हो कि जेहलम में डुबकियां दिलवाना चाहते हो?"

"आप डरें नहीं, जनाब! मेरा क्लीनर बहुत अच्छी तरह गाड़ी चलाना जानता है। वैसे भी मैं थक गया हूं।" ड्राइवर बोला।

"थके हो या नहीं," अरशद ने कहा, "वह हम नहीं जानते, पर हम क्लीनर को गाड़ी चलाने नहीं देंगे।"

"जैसी हुज़ूर की मर्ज़ी !" ड्राइवर फिर अपनी सीट पर आ बैठा और टैक्सी चल पड़ी।

इस बार टैक्सी चली तो बालकराम को लगा कि ड्राइवर वस्तुतः थका हुआ है और उसे शायद नींद भी आ रही है। अब तक उन लोगों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया था। और यदि वह नींद के झोंके में ज़रा-सा भी बहका तो उनमें से कोई भी बच नहीं पाएगा। उसे अरशद हुसैन पर खीझ-सी आ रही थी। पर उसका भी क्या दोष था, तब तो बालकराम ने भी यही चाहा था कि ड्राइवर ही गाड़ी चलाये। अब, जब वह चला रहा था तब इस हालत में अरशद हुसैन पर नाराज़ होने से क्या होगा !

फगवाड़ी पहुंचकर वे लोग एक मैदान में रुक गए। वस्तुतः टैक्सी यहीं तक जा सकती थी। उसके आगे जाने के लिए एक पगडंडी थी, जो मुहम्मद रउफ के घर तक ले जाती थी।

वैसे तो बालकराम स्वयं ही रउफ के घर जाना चाहता था, क्योंकि उसका अपना उससे बात करना और बात थी, जो कि किसी और के जाने से नहीं हो सकती थी। पर वह काफी थका हुआ था और वे लोग फारेस्ट गार्ड इनायत अली को इसी समय के लिए साथ लाये थे।

इनायत अली मुहम्मद रउफ के घर जाने वाली पगडंडी पर चला गया। वे लोग उसे जाता हुआ देखते रहे। जब वह पेड़ों के पीछे छिप गया तब वे सब भी टैक्सी में बैठ गए।

"जनाब को जब ज़रूरत हो, मुझे जगा लें।" ड्राइवर ने कहा और वह लेट गया।

बालकराम ने सोचा, यह भी अच्छा है। यह थोड़ी नींद यहां ले ले, ताकि बाद में कोई कठिनाई न हो। उसको स्वयं भी आराम की आवश्यकता थी। अच्छा होता, यदि वह भी सो पाता। पर एक तो उसे भूख लगी हुई थी; दूसरे, थकावट और चिन्ता इतनी थी कि सोना सम्भव नहीं था।

गार्ड को पन्द्रह-बीस मिनट नहीं तो आध घंटे में आ जाना चाहिए था, पर उसे गये हुए काफी समय हो गया था। चालीस मिनट हो गए तो बालकराम को चिन्ता होने लगी थी। कहीं मुहम्मद रउफ के भाई की मृत्यु तो नहीं हो गयी। वहां, टोपा से चलते समय उसने यह भी नहीं पूछा था कि गिरने से उसे चोट कितनी आयी है। यदि वहां कोई अनहोनी हो गयी तो गार्ड मुहम्मद रउफ से यह भी नहीं कह पाएगा कि वे लोग आए हैं और किस कारण से आए हैं।

फिर यह भी तो सम्भव है कि रउफ अपने भाई को लेकर किसी अस्पताल या किसी डॉक्टर के पास चला गया हो और यहां घर पर ही न मिले। यदि वह अब भी नहीं मिला तो फिर सारी मेहनत और जोखिम उठाना सब व्यर्थ जाएगा।

...यह भी तो हो सकता है कि इनायत अली को घर ही न मिला हो और वह जंगल की पगडंडियों में ही कहीं बहक गया हो। वह वहां ढूंढ़ता रहेगा और ये लोग यहां प्रतीक्षा करते रहेंगे।

घंटाभर होने को आया तो बालकराम की चिन्ता गहरी होने लगी थी। अरशद हुसैन के भी मुख पर व्याकुलता के चिह्न उभर आये थे।

"मियां अरशद हुसैन, अब तो स्वयं ही चलकर देखना होगा कि माजरा क्या है ?" बालकराम बोला, "रउफ साहब के घर पर खैर हो !"

"मैं समझता हूं," अरशद हुसैन ने कहा, "कि मैं यहां ठहरता हूं और तुम जाकर देखो कि आखिर बात क्या है ? पर जल्दी लौटना। तुम भी यदि वहीं रह गए तो यहां मेरा बुरा हाल हो जाएगा।"

"अच्छा, मैं चलता हूं," बालकराम ने कहा, "ऐसा करना कि आधे घंटे से ज्यादा तुम मेरा रास्ता मत देखना। तब तक यदि मैं न आऊं तो समझना कि कोई गड़बड़ है और तुम भी ड्राइवर को यहां ठहरने के लिए कहकर मेरे पीछे आ जाना।"

"अच्छा !" अरशद हुसैन ने बड़ी मजबूरी के साथ कहा। स्पष्ट ही उसे इस प्रकार अकेले रह जाना अच्छा नहीं लग रहा था। पर वह बालकराम को रोक भी नहीं सकता था।

बालकराम जाने के लिए मुड़ा ही था कि उसे दूर से फारेस्ट गार्ड

इनायत अली आता हुआ नज़र आया।

इनायत अली पास आया तो सबने देखा कि उसके हाथ में एक पोटली-सी थी, जिसमें कुछ बर्तन थे।

"ख़ैरियत !" बालकराम ने इनायत अली के बहुत पास आ जाने पर पूछा।

"सब ख़ैरियत ?" इनायत अली ने कहा।

"मुहम्मद रउफ मिले ?"

"जी हां," इनायत अली ने कहा, "वह पीछे-पीछे आ रहे हैं।"

"तुम्हें इतनी देर कहां लग गयी ?" बालकराम ने बड़े हल्के मन से पूछा, "हम तो यहां काफी घबरा रहे थे।"

"क्या कहूं, जनाब !" इनायत अली बोला, "पीछे ही पड़ गए कि खाना खाकर जा। पहले मुझे खाना खिलाया और फिर आप लोगों का खाना साथ दिया। उम्मीद है, आप गुस्ताखी माफ करेंगे।"

जब तक सब लोगों ने खाना खाया, मुहम्मद रउफ भी आ पहुंचे।

अभिवादन के पश्चात् उसने सीधे प्रश्न किया, "लालाजी, क्या कोई बहुत गम्भीर बात हो गयी है, जो आप साहबान को यहां तक आना पड़ा है ?"

बालकराम ने सारी बात संक्षेप में उसे समझा दी।

मुहम्मद रउफ सारी बात सुनकर सोचता रहा।

"क्या नुकसान काफी हुआ है ?" बालकराम ने उससे पूछा, "और अगर काफी भी हुआ है, तो भी मामला तो तुम्हें संभालना ही है। बात तुम पर भी आती है और रेंज अफसर होने के नाते सैयद साहब पर भी।"

"नहीं, नुकसान तो कोई विशेष नहीं हुआ," रउफ ने कहा, "बल्कि नुकसान तो हुआ ही नहीं है। पर मुझे इस बात का खतरा पहले से ही था।"

"नुकसान नहीं हुआ है ?" अरशद की हैरानी से चीख-सी निकल गयी, "दौड़ते-दौड़ते हमारी इतनी बुरी हालत हो गयी है और आप कह रहे हैं कि नुकसान हो नहीं हुआ है।"

"जी हां," मुहम्मद रउफ ने कहा, "नुकसान एकदम नहीं हुआ है।"

"तुम कह रहे हो कि इस बात का डर तुम्हें पहले से था, इसका क्या मतलब ?" बालकराम ने पूछा।

"बात यह है कि," रउफ ने कहा, "इस बार चारहान के जंगल का ठेका किसी स्थानीय ठेकेदार को नहीं दिया गया है। यह ठेका इस बार बाहर के एक ठेकेदार राजा सुलेमान खां को दिया गया है। स्थानीय ठेकेदार इस बात को अभी तक हज़म नहीं कर पाए हैं। मुझे डर था कि वे लोग कोई-न-कोई शरारत कर बैठेंगे। और वही हुआ है। उन लोगों ने ही यह झूठी शिकायत करवाई है।"

"तुम्हें पूरा विश्वास है कि नुकसान कोई नहीं हुआ ?" बालकराम ने फिर पूछा।

"बहुत अच्छी तरह।" मुहम्मद रउफ ने बहुत आश्वस्त स्वर में कहा, "मैं आज सुबह ही उस ओर गया था।"

"फिर तो डर की कोई बात नहीं है।" बालकराम ने कहा, "सैयद साहब पर कोई हर्फ नहीं आ सकता, पर फिर भी कल मौके पर तुम्हारा होना बहुत ज़रूरी है। तुम यदि वहां नहीं हुए तो एक तो बिना छुट्टी लिये गायब होने पर तुमसे पूछताछ होगी और फिर स्थानीय ठेकेदार कहीं तुम्हारी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर साहब को कोई उल्टी-सीधी बात न समझा दें।"

"नहीं, मेरा जाना तो बहुत ज़रूरी है।" मुहम्मद रउफ ने कहा, "मैं आप लोगों के साथ ही चल रहा हूं। मैं चलने की तैयारी करके आया हूं।"

"आपके भाई की तबीयत अब कैसी है ?" अरशद हुसैन ने पूछा।

"कुछ नहीं, चोट बहुत ज़्यादा नहीं है।" रउफ बोला, "मैं तो केवल चोट की बात ही सुनकर घबराकर चला आया था।"

चांदनी कुछ मद्धिम पड़ गयी थी। आकाश पर हल्की-हल्की बदली छा रही थी। यदि बादल इस प्रकार बढ़ते गए तो जल्दी ही अंधकार हो जाने का भय था और वर्षा में पहाड़ी क्षेत्र की यात्रा सरल नहीं होती।

वे लोग जल्दी-से-जल्दी चल पड़े। एक तो शीघ्र-से-शीघ्र अपने-अपने स्थान पर पहुंचना आवश्यक था और फिर वर्षा का भय। यदि उन लोगों को रात को रुकना पड़ता तो तीनों की ही मुसीबत हो जाती।

टैक्सी फगवाड़ी को काफी पीछे छोड़ आयी थी कि अचानक बादलों ने चांद को एकदम छिपा लिया। रात एकदम अंधेरी हो चुकी थी। कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। टैक्सी की रोशनी इतनी नहीं थी कि केवल उसी के सहारे यात्रा चलती रहती।

ड्राइवर कितनी ही बार रुक जाने का संकेत कर चुका था, पर उन तीनों में से कोई थोड़ी देर के लिए भी रुकना नहीं चाहता था। वरन् वे लोग तो उसे और तेज़ चलने के लिए कितनी ही बार कह चुके थे। इस मौसम में पहाड़ी सड़क पर तेज़ चलना कितने जोखिम का काम है, यह वे लोग जानते थे, पर चोरी से, बिना किसी प्रकार की अनुमति के अपने स्थान से हट आने का भय, इस समय पहाड़ी सड़क से बड़ा भय बना हुआ था। उसने उन्हें मौसम और सड़क का खतरा भुला रखा था।

सहसा बहुत ज़ोर से बिजली चमकी। सारी सड़क और पहाड़ियों तथा उनके साथ बहते हुए दरिया जेहलम पर प्रकाश की लाखों किरणें रेंग गयीं। और उसके बाद जैसे आकाश फट पड़ा। इतनी ज़ोर से गरज हुई कि सब लोगों को उस गरज से उबरकर अपने-आपको पाने में भी कुछ समय लगा।

पहाड़ी क्षेत्र का तूफान आरम्भ हो चुका था। लगभग सौ मील प्रति घंटा की गति से आया तूफान पूरे वेग से एक पहाड़ी से टकराता था और फिर उससे लौटकर दूसरी पहाड़ी की ओर झपटता था। पागल भैंसे के समान डकराता यह तूफान पहाड़ियों को अपने सींगों से उखाड़-उखाड़कर फेंकने के प्रयत्न में लगा हुआ था…

टैक्सी में अगल-बगल बैठे लोग एक-दूसरे की बात नहीं सुन पा रहे थे। ड्राइवर को कुछ दीख नहीं रहा था…

बालकराम को लगा कि यह आंधी अभी किसी अत्यन्त शरारती बच्चे के समान मोटर को खिलौने के समान उठाकर सड़क के साथ लगे, डेढ़ मील नीचे बहते दरिया जेहलम में फेंक देगी। तब उन लोगों की लाशों का भी पता नहीं चलेगा। और उनके सौभाग्य से यदि उनकी लाशें मिल भी गयीं तो वे इतनी बिगड़ चुकी होंगी कि यह पहचानना भी मुश्किल हो जाएगा कि कौन-सी किसकी लाश है। पता नहीं किसकी लाश किसकी

समझ ली जाए···पता नहीं उसकी अपनी पत्नी किसकी लाश से लिपट-लिपटकर रोएगी···

उसका मन तूफान से भी अधिक वेग से बह निकला था···

"गाड़ी रोको!" उसने पूरे ज़ोर से चीखकर कहा।

वह समझ नहीं पाया कि किसी ने उसकी आवाज़ सुनी भी कि नहीं, पर रेंगती हुई टैक्सी को ड्राइवर ने एक मोड़ पर एक पहाड़ी की ओट लेकर खड़ा कर दिया था···

पहाड़ी की ओट में आते ही वे तूफान के सीधे झोंकों से बच गए थे, पर आंधी की तेज़ी से एकदम सुरक्षित वे लोग अब भी नहीं थे।

टैक्सी के कैन्वेस के परदे अब भी बहुत ज़ोर-ज़ोर से फड़फड़ा रहे थे।

'अच्छा होता यदि वे लोग कोई नयी-सी टैक्सी लेकर आए होते···' बालकराम सोच रहा था, 'उसमें खिड़कियों पर शीशे तो लगे होते न। ये कैन्वेस के परदे तो अपने-आपमें मुसीबत थे। जितना शोर आंधी नहीं कर रही थी, उससे ज़्यादा शोर ये परदे कर रहे थे···'

वर्षा बहुत तेज़ी से आरम्भ हो गयी थी, पर आंधी का वेग अभी तक कुछ भी कम नहीं हुआ था। आंधी के साथ-साथ बड़े-बड़े ओले छितराकर उन लोगों के आसपास जमा हो रहे थे।

"आसपास कोई आबादी नहीं है?" अरशद हुसैन ने पूरे दम से चीख-कर पूछा।

"दो मील के इधर कुछ भी नहीं है।" मुहम्मद रउफ भी उसी प्रकार चीखा।

कड़-कड़ झूम···धड़ाम। उनसे कोई बीस फुट की दूरी पर एक बड़ा पुराना पेड़ टूटकर गिरा···पर वह सड़क पर न गिरकर खड्ड की ओर गिरा था। बड़ी देर तक वे उस पेड़ की चट्टानों से रगड़ खाकर गिरते हुए क्रुद्ध अजगर की फूत्कार का-सा स्वर सुनते रहे और अन्त में जेहलम के पानी की लय को तोड़कर उसने अपने तह तक पहुंच जाने का पता दिया···

"रास्ते में वह कहीं नहीं रुका।" बालकराम ने कहा।

"कैसे रुकता ?" अरशद इतना ही कहकर चुप हो गया।

"सौ साल पुराना अवश्य रहा होगा!" साथ आये गार्ड ने कहा।

वे लोग चुपचाप खड़े आकाश की ओर देखते रहे। बादल गरज रहे थे और बरस भी रहे थे।

"एक भी पेड़ सड़क पर गिर पड़ा तो मोटर घोड़ागली नहीं पहुंच सकेगी।" बहुत देर के पश्चात् ड्राइवर ने बड़े सहमे हुए स्वर में कहा।

"मेरे मकान की छत टीन की है," बालकराम अपने-आपसे बोला, "वह कहीं उड़ ही न गयी हो।"

"क्या हो गया, लालाजी!" रउफ ने डर से स्वयं को बचाने के लिए ज़ोरदार कहकहा लगाया, "सबकी छतें टीन की हैं। उड़ीं तो सबकी उड़ जाएंगी। तूफान को रेंज क्लर्क से विशेष शत्रुता नहीं है।"

कुछ देर बाद उन लोगों को लगा कि आंधी एकसार-सी हो गयी है, उसमें अब झोंके नहीं रहे हैं, यह आंधी के ज़ोर में कमी का सूचक था। और फिर उनके देखते-देखते ही तूफान थम गया। आकाश अब भी काले बादलों से ढका हुआ था। चांद का कहीं पता नहीं था और अब चांद के निकलने की प्रतीक्षा भी नहीं की जा सकती थी। आंधी का कम होना ही उनके लिए बहुत था।

वे लोग बड़ी धीमी गति से चल पड़े। सड़क एकदम साफ नहीं थी। ओले, टहनियों और पत्तों से पटी पड़ी थी। पर टैक्सी किसी-न-किसी प्रकार बढ़ती जा रही थी।

टैक्सी की धीमी रोशनी में ही बहुत दूर से ड्राइवर ने देख लिया था कि सड़क के बीच कोई रुकावट पड़ी हुई है। जैसे-जैसे टैक्सी पास पहुंचती गयी, उसका रूप स्पष्ट होता गया। यह चीड़ का एक बड़ा-सा पेड़ था, जिसका काफी भाग सड़क पर था।

टैक्सी के रुकते ही सबकी दृष्टि उस पर पड़ी और बालकराम को लगा कि एक बार फिर से आंधी आरम्भ हो गयी है···पेड़ इतना बड़ा था कि उसका हटाया जाना सम्भव नहीं था। उसके लिए तो सुबह की प्रतीक्षा करनी पड़ती, जबकि पास की, वन विभाग की चौकी से सहायता मांगी जाती, या फिर सड़क साफ करने वाली टुकड़ियां अपने काम पर निकलतीं।

वे लोग कुल्हाड़ियों से काट-काटकर उस पेड़ को हटाते और तब कहीं जाकर रास्ता साफ होता और वे लोग आगे बढ़ सकते थे···

एक बार तो बालकराम के मन में आया कि वह टैक्सी छोड़कर पैदल ही घोड़ागली की ओर चल दे। वह फिर भी दफ्तर के समय तक शायद वहां तक पहुंच जाए।···पर फिर स्वयं ही उसे यह विचार बड़ा बचकाना-सा लगा। अभी घोड़ागली तो घोड़ागली, बांसरागली भी दूर थी और वैसे भी सब लोगों को इस प्रकार छोड़कर निकल पड़ना सम्भव नहीं था। साथ रहकर तो वे बाधाएं पार कर सकते थे, अकेला बालकराम क्या करेगा ? और फिर यही पेड़ अकेला नहीं था, और भी पेड़ रास्ते में गिरे हो सकते हैं। उसका इस प्रकार अकेला जाना न सम्भव था, न उचित।

ड्राइवर टैक्सी से उतरकर सड़क पर चला गया था। वह काफी देर तक पेड़ का निरीक्षण करता रहा और फिर लौट आया।

"है कोई उम्मीद ?" मुहम्मद रउफ ने पूछा।

"वैसे तो कोई उम्मीद नहीं है।" ड्राइवर बोला, "पेड़ बहुत बड़ा है और हम छह-सात आदमियों के बस का नहीं है। मेरे पास एक कुल्हाड़ी तो है, पर उसको काटते-काटते भी सुबह हो जाएगी। पर फिर भी थोड़ी-सी उम्मीद है···"

"क्या उम्मीद है ?" बालकराम ने पूछा, "किसी भी तरह से पेड़ हट सकता हो तो बताओ, हमारा जल्दी-से-जल्दी घोड़ागली पहुंचना बहुत ज़रूरी है।"

"पेड़ कुछ इस ढंग से गिरा है," ड्राइवर बोला, "उस पेड़ के धड़ का ज़्यादा हिस्सा सड़क से परे खड्ड के ऊपर लटका हुआ है। यदि हम सब मिलकर हिम्मत करें तो हो सकता है कि हम उसे ज़रा-सा खिसकाने में सफल हो जाएं और तब यह पेड़ नीचे खड्ड या दरिया में जा पड़ेगा।"

वह चुप हो गया और सब लोग एक-दूसरे का मुख देखने लगे।

"प्रयत्न करने में क्या हर्ज है ?" अन्त में अरशद हुसैन ने कहा।

कोई भी कुछ नहीं बोला। पर एक-एक करके सब लोग चुपचाप आकर पेड़ के पास में खड़े हो गए।

ड्राइवर अपनी टैक्सी का हैंडल निकाल लाया था और उसे पेड़ के नीचे धंसाने का प्रयत्न कर रहा था।

बालकराम ने देखा, ड्राइवर का विचार ठीक था। पेड़ कुछ इस प्रकार सड़क पर संतुलित हुआ पड़ा था कि वे लोग उसे तीन-चार इंच भी हिला देते तो वह नीचे खड्ड की ओर लुढ़क जाता।

सबसे पहले ड्राइवर ने हाथ लगाया, उसके बाद उसका क्लीनर भी लगा और तब फारेस्ट गार्ड अरशद हुसैन तथा रउफ भी लग पड़े। बालकराम ने सबके बाद हाथ लगाया।

उन्होंने एक बार मिलकर धक्का लगाया, पर पेड़ अपनी जगह से इंच-भर भी नहीं खिसका।

बालकराम ने हाथ झाड़े और सीधा खड़ा हो गया।

किसी के भी चेहरे पर आशा की कोई रेखा नहीं थी।

"एक बार फिर कोशिश करें," ड्राइवर ने खीझकर कहा, "चल भई, बन्ते!"

और उसका क्लीनर उसके साथ लग पड़ा।

मजबूरी में सबको साथ लगना पड़ा।

"बचना, लालाजी!" ड्राइवर सीधा खड़ा हो गया, "आप तो ऐसे ज़ोर लगा रहे हैं कि पेड़ कुछ भी खिसका तो आप पहले जेहलम में होंगे।"

सब फिर लगे। एक झटका मारा...पेड़ ज़रा हिला।

"हां, भई बन्ते!" ड्राइवर चीखा...और पेड़ सारा का सारा सड़क से खिसक गया था।

पेड़ का क्या हुआ, देखने के लिए कोई नहीं रुका। वे लोग टैक्सी में बैठे और टैक्सी चल पड़ी। वे लोग जल्दी-से-जल्दी घोड़ागली पहुंचना चाहते थे।

टैक्सी बिना किसी अड़चन के आगे भागती जा रही थी। वर्षा का शोर भी कम हो चुका था। बूंदें भी विंड स्क्रीन पर कम ही पड़ रही थीं। शायद वर्षा एकदम थम चुकी थी। बालकराम को ऊंघ आने लगी थी। उसे लगा कि उसके सिर पर एक बहुत बड़ा बोझ था, जो उस नींद को उसके पास तक आने नहीं दे रहा था। अब जैसे वह बोझ हट गया था और उसके

पपोटे भारी होने लगे थे। उसे इतना ही याद था कि बंद होते हुए पपोटे ने कहीं धुंधला-सा—शायद टैक्सी की रोशनी में—सड़क के किनारे पत्थर पर लिखा देखा था : घोड़ागली, 5 मील।

और उसके बाद बालकराम को कुछ भी याद नहीं रहा।

बालकराम आज सुबह से अपनी सीट पर बैठा सो रहा था।

दफ्तर में अपने समय पर आना तो अनिवार्य था, इसलिए वह आ गया था। पर काम कोई भी नहीं हो पा रहा था। रातभर का जागा हुआ था। आंखें बार-बार झंप जाती थीं। वह सायास उन्हें खुला रखता तो वे बुरी तरह जलने लगतीं। और न तो वह झंपती आंखों से काम कर सकता था, न जलती आंखों से।

उसका काम करना कोई बहुत ज़रूरी भी नहीं था। रेंज अफसर सैयद साहब तो यहां थे नहीं, तो उसके काम की पूछताछ कौन करता! और अगर सैयद साहब यहां होते ही, तो फिर इस सारी भाग-दौड़ की आवश्यकता ही क्यों पड़ती? वैसे भी काम तो उसे ही करना था, आज करता या कल करता।

फिर रह-रहकर उसका मन भागकर टोपा चला जाता। आज डेविड साहब वहां सुबह-ही-सुबह गए होंगे। वहां से चारहान के जंगल की ओर गए होंगे। पता नहीं मुहम्मद रउफ को उन्होंने बुलाया है या नहीं। और रउफ भी पता नहीं मौके पर पहुंचकर बात संभाल पाया है कि नहीं। वैसे जब रउफ कह रहा था कि नुकसान कोई हुआ ही नहीं है, वह सारी शिकायत सिरे से ही झूठी हैं, तो मौके पर बात संभालने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

पर शिकायत करने वाले इतने बच्चे तो नहीं होंगे। उन्होंने कोई-न-कोई काम तो किया ही होगा। पुराने कटे हुए पेड़ों के ठूंठों को ही चाहे नये सिरे से छील दिया हो और साहब को दिखाकर कह दिया हो कि ये पेड़ बिना अनुमति और अधिकार के काटे गए हैं। कुछ भी हो, मुहम्मद रउफ का वहां मौके पर पहुंचना बहुत ज़रूरी है।

पर वहां क्या हुआ, इसका पता कैसे लगे। साहब को कोई प्रमाण

मिला कि नहीं। गवाह उपस्थित हुए कि नहीं। साहब ने शिकायत को सच माना या झूठ माना—बालकराम के मन में प्रश्न-ही-प्रश्न उभर रहे थे।

इस प्रकार की घटना यहां कोई नयी नहीं थी। शिकायतें होती रहती थीं, पूछताछ भी होती रहती थी। कोई शिकायत सच निकलती, कोई झूठ। पर बालकराम के मन में इस प्रकार तूफान पहले नहीं चले थे। वह आज तक इन सारी बातों को बड़े तटस्थ ढंग से देखता आया था। वह तो एक क्लर्क था, जिसका काम अफसर के कहने पर शिकायत लिख लेना और अफसर का फैसला उस पर लिख देना था। वह तो एक मशीन था, उसका इन बातों से कोई रागात्मक सम्बन्ध हो ही कैसे सकता था।···पर आज वह एक मशीन नहीं था, वह मात्र एक क्लर्क भी नहीं था। जो कुछ भी हो रहा था, वह उसका अंग था। उसने इस सारे काण्ड में भाग लिया था। उसकी आंखें ऐसे ही तो नहीं जल रही हैं। फिर काण्ड का अंग होकर वह कैसे तटस्थ द्रष्टा रह सकता है···

पर ये जिज्ञासाएं···

इन जिज्ञासाओं का अन्त तो एक ही ढंग से हो सकता है···अरशद हुसैन शाम से पहले नहीं आएगा। हो सकता है, वह साहब के साथ ही मौके पर गया हो। हो सकता है, साहब ने सोचा हो कि वह सारा काम अकेला ही कर लेगा।···अरशद साथ जाए या न जाए, पर क्या हुआ, इसका पता उसे लग जाएगा। साहब को जो कुछ लिखवाना होगा, वह सारा काम तो अरशद से ही होगा न!···पर अरशद आए तो कुछ पता चले···

सहसा बालकराम को लगा कि उसके मन पर कल जो बोझ था, आज वह नहीं है। उसके मन में तो जिज्ञासा मात्र है। जैसे कोई निर्देशक अपने द्वारा निर्देशित नाटक को मंच पर प्रस्तुत होते हुए उत्सुकता से देखे···

शाम को बालकराम की आशानुसार अरशद हुसैन उसे अपने दफ्तर की ओर आता हुआ दिखा। बालकराम के भीतर बैठा उत्सुकता का नाग अपनी कुंडली छोड़, फन उठाकर खड़ा हो गया···

अरशद हुसैन उसके कमरे के भीतर आया तो चेहरा बालकराम को गम्भीर लगा।

बालकराम का कौतुक कहीं विलीन हो गया और चिन्ता ने फिर उसे घेरा, "खैरियत तो है, मियां अरशद हुसैन ?" उसने पूछा।

"लालाजी, बहुत अच्छा समाचार नहीं है।" अरशद ने बड़े सूखे-से स्वर में कहा।

"क्या जंगल में कोई बड़ा नुकसान पकड़ा गया ?" बालकराम ने घबराकर पूछा।

"नहीं।" अरशद ने कहा, "मैंने चाहा था कि मैं साहब के साथ चलूं, पर वह मुझे लेकर नहीं गए। वह ऐसे मामलों में किसी भी हिन्दुस्तानी का विश्वास नहीं करते।"

"फिर क्या हुआ ?" बालकराम का दम उसके गले में आ लटका था।

"शाम को साहब लौटे तो बहुत नाराज़ थे।" अरशद ने बताया, "वे दिनभर चारहान के जंगल में भटकते रहे हैं, पर उनको एक भी पेड़ अनुचित रूप से काटा हुआ नहीं मिला।"

"उन गवाहों का क्या हुआ, जिन्होंने शिकायत की थी ?" बालकराम ने पूछा।

"साहब कह रहे थे," अरशद ने कहा, "कि उन लोगों में से कोई भी वहां हाज़िर नहीं हुआ।"

बालकराम प्रसन्नता की उत्तेजना में कुछ ऊंचे स्वर में बोला, "तो मियां साहब, सब कुछ हमारी इच्छा के अनुसार हो गया। और आप क्या चाहते हैं ? न नुकसान पकड़ा गया, न वे गवाह ही उपस्थित हुए। तो न सैयद साहब पर हर्फ आएगा और न रउफ को कोई हानि होगी।"

"वह सब तो ठीक है, लालाजी।" अरशद ने और भी मुंह लटका लिया, "पर साहब तो आपसे नाराज़ हैं।"

"मुझसे ?" बालकराम एकदम चौंक उठा, "मुझसे क्यों ?"

"बात इस प्रकार है," अरशद हुसैन ने कहा, "साहब का विचार है कि आपको इस शिकायत का पता पहले से लग गया था और आपने फगवाड़ी जाकर रउफ को इस बात की सूचना दी है। रउफ ने आपके कहने पर उन गवाहों को पैसे देकर तोड़ लिया है और उन्हें मौके पर उपस्थित नहीं होने दिया और रउफ जानकर साहब को नुकसान वाले स्थान की ओर

नहीं ले गया और इधर-उधर घुमाता रहा है और साहब चारहान से अनजान होने के कारण स्वयं नुकसान वाली जगह खोज नहीं पाए।...शायद आपका तबादला खानेवाल में कर दिया जाए।"

"यह साहब का विचार ही है कि उनके पास इस बात का कोई प्रमाण भी है ?" बालकराम अपने बचाव का कोई रास्ता ढूंढ़ रहा था।

"मेरा विचार है," अरशद हुसैन ने कहा, "कि उनके पास प्रमाण भी है। नहीं तो वह ऐसा कोई काम नहीं कर सकते थे। दफ्तर में आते ही उन्होंने आपकी रिपोर्ट लिखी है और कंसर्वेटर साहब को लिखा है कि 'लाला बालकराम घोड़ागली क्षेत्र में अत्यन्त प्रभावशाली हो गया है, इसलिए इसका यहां से तबादला बहुत आवश्यक है'।"

"पर साहब को किसने बताया होगा...?" बालकराम सोच रहा था और अरशद हुसैन की ओर भी देख रखा था।

सहसा वह सीधा होकर बैठ गया, "और तुम्हारे साथ क्या होगा, मियां अरशद हुसैन ?"

अरशद का रंग पीला पड़ गया। उसने घबराकर इधर-उधर देखा। वह बालकराम के पास खिसक आया और बहुत धीरे से बोला, "लालाजी, अब मेरी जान आपके हाथ में है।"

"मेरे हाथ में ?" बालकराम ने पूछा। उसे अरशद के मुंह से यह बात बड़ी विचित्र लग रही थी।

"मुझे लगता है," अरशद ने कहा, "कि या तो यह साहब बहुत घाघ है। उसने इस सारी बात में मेरा नाम कहीं भी नहीं लिया है। पता नहीं मेरे साथ वह क्या करेगा ! मेरी तो नौकरी भी अभी कच्ची है। या फिर...।" वह चुप हो गया।

"या फिर ?" बालकराम ने उसकी ओर देखा।

"या फिर जिस आदमी ने साहब को यह सारी सूचनाएं दी हैं, वह मुझे नहीं पहचानता था। साहब को यह तो मालूम है कि आपके साथ एक आदमी और था, पर वह कौन था, यह उन्हें नहीं मालूम।"

"ऐसा कौन आदमी हो सकता है, जिसने साहब को यह सारी सूचना दी हो और वह तुम्हें न जानता हो..." और सहसा बालकराम निष्कर्ष पर

पहुंचा, "कहीं यह उस फारेस्ट गार्ड अता हुसैन की शरारत तो नहीं, जो हमें वांसरागली की चुंगी पर मिला था?"

"शक मुझे भी उसी आदमी पर था, लालाजी!" अरशद बोला, "पर आपके सामने यह कहने से झिझक रहा था। मुझे उस पर तभी शक हुआ था, जब उसने टैक्सी का नम्बर नोट किया था। और आप सच मानें, साहब को उस टैक्सी का नम्बर तक मालूम है, जिसमें हम फगवाड़ी गए थे। और किसी ने तो नम्बर की ओर ध्यान ही नहीं दिया था। मुझे स्वयं नम्बर याद नहीं था।"

बालकराम चुप रहा। उसे भी आशंका थी कि कहीं ऐसी बात न हो जाए। अता हुसैन ने सैयद साहब को भी तो सलाम भेजा था। इसका मतलब है कि उसे सब कुछ पहले से भी मालूम था। पर अता हुसैन···बात बालकराम के गले से नीचे नहीं उतर रही थी। ठीक है, अता हुसैन ने टैक्सी का नम्बर लिया था। यह भी ठीक है कि उसने सैयद साहब को सलाम भेजा था, पर वह इतना कमीना नहीं हो सकता···

अता हुसैन जब घोड़ागली में था तब बालकराम ने बहुत-कुछ किया था उसके लिए। उसकी पत्नी बालकराम की पत्नी के पास जाकर अपना दुखड़ा रोया करती थी। अता हुसैन वैसे तो अच्छा पति भी था और अच्छा बाप भी, पर वह शराब ज़रूर पीता था और शराब के ही कारण घर में अधिक पैसे नहीं दे पाता था। बालकराम की पत्नी अपने घर से उसके बच्चों के लिए लस्सी भिजवा दिया करती थी, अपनी बाड़ी से सब्जियां दे दिया करती थी। अपने बच्चों के पुराने कपड़े दे देती थी···और भी बहुत-कुछ दिया करती थी।···

और एक बार जब इसी शराब के कारण अता हुसैन अपनी ड्यूटी से चूक गया था और उसकी नौकरी एक तरह से छूट ही चुकी थी, तब बालकराम के कहने पर ही सैयद साहब ने किसी प्रकार उसे बचा लिया था। उससे अता हुसैन उस बात के लिए बालकराम और सैयद साहब दोनों का ही अत्यन्त कृतज्ञ था। वह ऐसा नहीं कर सकता···

···पर हिन्दुस्तानियों का क्या पता···बालकराम ने सोचा···यहां तो ये अपने स्वार्थ के लिए सारी कृतज्ञता भूल जाते हैं, कोई किसी का किया

नहीं मानता, पर बालकराम अता हुसैन से एक बार पूछेगा ज़रूर। आखिर उसने यह किस बात का बदला लिया? क्या बालकराम की उन सारी भलाइयों का बदला यही था? वह एक बार ज़रूर अता हुसैन से पूछेगा…

कोहमरी के पुलिस इंस्पेक्टर मिर्जा बाकर अली बालकराम के पास आए बैठे थे।

मिर्जा बाकर अली सैयद साहब के घनिष्ठ मित्रों में से थे और बहुधा सैयद साहब से मिलने आया करते थे। सैयद साहब के कारण ही बालकराम के साथ भी काफी खुल गए थे। आज भी वह सैयद साहब से मिलने आए थे। पर सैयद साहब के न मिलने के कारण आकर बालकराम के पास बैठ गए थे।

"कैसा चल रहा है आपका काम-धाम?" मिर्जा ने पूछा।

"काम-धाम क्या, मिर्जा साहब!" बालकराम बोला, "अब तो नये रेंज क्लर्क की प्रतीक्षा कर रहा हूं। उसके आते ही उसे चार्ज देकर मुझे खानेवाल जाना है। मेरा तबादला खानेवाल हो गया है। सोचता हूं सैयद साहब उससे पहले आ जाएं तो उनसे मुलाकात ही हो जाए।"

"तो आपका तबादला हो गया।" मिर्जा बाकर अली बोले, "मुझे पहले ही शक था कि ऐसा कुछ-न-कुछ होगा ज़रूर।"

"आपको!" बालकराम बोला, "आपको कैसे शक हो गया, साहब?"

"आपको खबर नहीं," बाकर अली बोले, "जिस दिन रात को ज़बर्दस्त तूफान आया था, उसी दिन सवेरे हमें बांसरागली के पास एक खड्ड में एक लाश मिली थी। उसी के मारे परेशान थे कि दोपहर के बाद आपके डिविज़नल अफसर जान डेविड तशरीफ लाये। उन्होंने नाइटपास वाली एक टैक्सी का नम्बर दिया और उसे बुलवा देने के लिए कहा। हमने उस टैक्सी वाले को बुलवा दिया। बुलवाना तो था ही, साहब बहादुर का हुक्म था।"

"नाइटपास वाली टैक्सी को," बालकराम बोला, "तो साहब ने पूरी इंक्वायरी की?"

"हां, साहब!" बाकर अली बोले, "उस टैक्सी वाले ने बताया कि टेलीफोन करके उसे मरी स्टैंड से बांसरागली बुलाया गया था। वहां से

दो बाबू लोग उसकी टैक्सी में बैठे थे। वे लोग भूरवन गए थे। वहां से वापस टोपा गए, टोपा से फगवाड़ी गए और फगवाड़ी होते हुए घोड़ागली आए थे। उसने बहुत सारे लोगों के हुलिये दिए, जो टैक्सी में थे। उस रात का उसने बड़ा भयंकर वर्णन किया। उसने कहा कि वह रात ऐसी नहीं थी, जिसमें पहाड़ी सड़क पर टैक्सी चलाई जाती, पर बाबू लोग अपनी जान पर खेल रहे थे तो वह कैसे इनकार कर देता! उसने यह भी कहा कि वह उन लोगों के नाम तो नहीं जानता, पर यदि वे लोग उसके सामने करा दिये जाएं तो वह उनको पहचान लेगा।"

"दुर्भाग्य है हमारा, मिर्जा साहब!" बालकराम बोला, "बात भी साली कोई खास नहीं थी, एक झूठी शिकायत थी, पर उससे सैयद साहब पर हर्फ आता था। इसलिए मैं चल पड़ा था। पर ऐसा हुआ कि संयोग से एक फारेस्ट गार्ड हमें बांसरागली की चुंगी पर मिल गया, जहां हमने टैक्सी मंगवाई थी। उस साले को पता नहीं क्या सूझा, उसने टैक्सी का नम्बर भी लिख लिया और जाने कब जाकर साहब से शिकायत भी कर दी। मेरा तो विचार है कि हम इधर भूरवन गए होंगे और वह उधर साहब के पास घोड़ागली पहुंचा होगा। उसने इधर सब कुछ बता दिया।"

"आपको बांसरागली में कोई फारेस्ट गार्ड मिला था?" बाकर अली बोले, "कहीं वही तो नहीं जिसके मारे हम भी परेशान बैठे हैं?"

"आप किसकी वजह से परेशान बैठे हैं?" बालकराम ने पूछा।

"मैंने बताया न," बाकर अली बोले, "आपको याद होगा, रात को बड़ा भारी तूफान आया था। सवेरे हमारे सिपाही एक खड्ड से एक लाश उठा लाये। सवाल हमारे सामने यह था कि वह मरा कैसे?"

"कुछ पता चला?" बालकराम ने पूछा।

"पता खाक चलना है," बाकर अली बोले, "सीधी-सी बात तो यह है कि आंधी के ज़ोर ने उसे सड़क से उठाकर खड्ड में गिरा दिया, जिससे उसकी मौत हो गयी। पर यह भी तो हो सकता है कि उसने आत्महत्या की हो! उसने स्वयं खड्ड में छलांग लगा दी हो और बाद में उसी रात संयोग से आंधी आ गयी हो…"

"यह भी तो हो सकता है," बालकराम बोला, "कि किसी और ने

आंधी का लाभ उठाकर उसे धक्का दिया हो। आखिर फारेस्ट गार्ड ही तो है, पचासों दुश्मन होंगे उसके !"

"हां, यह भी हो सकता है," वाकर अली बोले, "बल्कि सबसे बड़ी सम्भावना यही है और इसीलिए हम परेशान हैं। और फिर पहले-पहल तो वह पहचाना ही नहीं गया। काफी खोजबीन के बाद पता चला कि वह फारेस्ट गार्ड है और उसका नाम अता हुसैन है।"

"अता हुसैन ?" बालकराम अपनी कुरसी से उठ खड़ा हुआ।

"क्यों, क्या बात है ?" वाकर अली ने पूछा।

"मिर्जा साहब !" बालकराम ने कहा, "अता हुसैन तो वही फारेस्ट गार्ड है, जो हमें बांसरागली की चुंगी पर मिला और जिस पर मेरा शक है कि उसने साहब को आकर सूचनाएं दी हैं।"

"तो साहब, आपका शक गलत है।" वाकर अली बोले, "वह गरीब तो उसी रात मर गया या मारा गया। और मेरा विचार है कि यह सम्भव नहीं है कि वह आपके जाने के बाद बांसरागली से घोड़ागली आया हो, साहब को उसने सब कुछ बताया हो और मरने के लिए फिर बांसरागली लौट गया हो। यह सम्भव ही नहीं है।"

"तो फिर साहब को किसने सब कुछ बताया ?" बालकराम मानो अपने-आप से प्रश्न कर रहा था, "मेरा तो पूरा शक उसी पर था, पर मैं यह भी सोच रहा था कि वह ऐसा काम कर नहीं सकता। मैं उस व्यक्ति को बहुत अच्छी तरह जानता हूं।"

"तो आपकी दूसरी बात सही है। उस व्यक्ति ने वह काम नहीं किया है।" वाकर अली बोले, "मैं पूरी तरह नहीं कह सकता कि यह मुखबिरी किसने की है, पर मुझे किसी पर शक जरूर है।"

"आपका शक किस पर है ?" बालकराम ने बहुत उतावलेपन से पूछा।

"पहले आप तो सोचिए कि यह काम किसका हो सकता है ?" वाकर अली हंसे।

"मिर्जा साहब, मैं क्या कहूं, मेरी अक्ल ही चकरा गयी है," बालकराम बोला, "मेरा शक अता हुसैन पर था। पर वह गरीब इस दुनिया में नहीं

है। उसका दोस्त चुंगी का क्लर्क क्या यह काम करने लगा? उसको इससे कोई लाभ नहीं है। फिर ठहरे अरशद हुसैन। वह मेरे साथ थे। वह यह साहस भी नहीं कर सकते, क्योंकि फिर उनकी अपनी नौकरी पर भी आ बनेगी। मुहम्मद रउफ और उनके गार्ड पर भी यह शक नहीं किया जा सकता।"

"फिर भी किसी पर तो आपको शक करना ही पड़ेगा न, साहब!" बाकर अली बोले।

"शक मैं किस पर करूं, जनाब!" बालकराम बोला, "ये सब अपने ही हैं···पर···" वह ठहरा, "पर सब साले हिंदुस्तानी हैं। इनमें से कोई भी अंग्रेज़ों की जूतियां चाटने की गद्दारी कर सकता है। मेरी तो समझ में कुछ नहीं आ रहा।"

"आपने जिन लोगों के नाम लिये हैं, उन्हें मैं नहीं जानता," बाकर अली बोला, "पर आपके साहब ने एक बात कही थी।"

"क्या?" बालकराम ने पूछा।

"आपके साहब कह रहे थे," बाकर अली बोले, "कि हिन्दुस्तानी लोग बहुत कमीने होते हैं। जिसका नमक खाते हैं, उसी के साथ गद्दारी करते हैं। वे कभी इन लोगों पर विश्वास नहीं करेंगे। यह सब तो इतनी सफाई से किया गया था कि उन्हें कुछ भी पता नहीं चलता। पर एक हिन्दुस्तानी की वफादारी ही उनके काम आयी। यदि उनका कैम्प क्लर्क वफादार न होता तो बाबू बालकराम तो उन्हें धोखा दे ही चुका था।"

"कैम्प क्लर्क?" बालकराम के मुंह से चीख निकली।

"क्यों?" बाकर अली ने पूछा।

"कैम्प क्लर्क तो अरशद हुसैन है।" बालकराम बोला, "जो मेरे साथ गया था और जिसने मुझे यह सब कुछ करने के लिए उकसाया था। ···तो तभी सब कुछ जानते हुए भी साहब ने कुछ नहीं कहा।"

"साहब कह रहे थे," बाकर अली बोले, "वे अपने कैम्प क्लर्क की नौकरी पक्की कर देंगे और उसको तरक्की देंगे।"

"सही है !" बालकराम की मुसकान में कड़वाहट थी, "और सैयद साहब का क्या होगा ?"

"वे भी किसी घटिया-सी जगह में फेंक दिए जाएंगे। और क्या···" बाकर अली बोले।

बाहर से किसी के आने का स्वर हुआ और वे दोनों ही चुप हो गए।

वृत्त

लालचन ने मोतीबाग का बस-अड्डा पार कर रेल-पुल के बहुत पहले ही बड़ी सड़क छोड़ दी थी। वह चुपचाप सिर झुकाए बीड़ी पीता हुआ, किनारे-किनारे चला जा रहा था।

इस प्रकार सिर झुकाकर, चुपचाप बीड़ी पीते हुए चलना लालचन का स्वभाव नहीं है।

ऐसा तो कभी-कभी होता है, जब वह किसी गहरी सोच में हो। नहीं तो लालचन बहुत मस्त रहता है। वह अपने सब साथियों से बड़ी पगड़ी बांधता है। पगड़ी क्या, पूरा पग्गड़। कोई भी कपड़ा राजस्थानी ढंग से वह सिर के ऊपर लपेट लेता है। गले में खद्दर की, खद्दर के ही बुतामों वाली बंडी होती है। सिलने के बाद जब पहली बार लालचन वह बंडी पहनता है तो उसका रंग सफेद होता है। दो-एक दिनों में ही वह या तो पीली हो जाती है या काली। उसके बदले हुए रंग का निर्णय लालचन का तत्कालीन काम करता है। यदि वह मकानों की सफेदी के काम में लगा होता है तो बंडी पीली हो जाती है और, किसी भी अन्य काम में होने पर काली। वह घुटनों से ऊपर-ही-ऊपर लांग वाली धोती बांधता है—काफी कसी हुई। धोती का भाग्य बंडी से भिन्न नहीं होता। पांव में चमड़े की राजस्थानी जूतियां होती हैं—लाल रंग की; जिनके ऊपर पड़ी धूल उसका रंग स्पष्ट नहीं होने देती। और ऐसा लालचन बड़ा मस्त होकर गाता हुआ चलता है।

"यही उमिर है गाने की।"—लालचन सोचता है। बाईस वर्षों का है लालचन। अपने कपड़ों और मुख पर अनुभवों के छोड़े हुए चिह्नों से लालचन बाईस का लगता नहीं। काफी बड़ा लगने लगा है लालचन! पर उससे उसे कोई शिकायत तो नहीं है। अच्छा ही है—लोग छोकरा

समझकर उसकी बात को नहीं टालते न !

सवेरे जब लालचन काम पर गया था तो बड़ा मस्त था। सारा रास्ता ऊंचे स्वरों में बहुत सारे लोक-गीत, जितने-जितने उसे याद थे, गाता गया था। कभी-कभी कोई और भी उसके स्वर में स्वर मिला देता था। पर ज़्यादातर वह अकेला ही गाता गया था।

सवेरे सारी बस्ती के लोग एक साथ ही घर से निकलते थे। सबके पास दोपहर का खाना, पोटलियों या डिब्बों में होता था और कुछ बच्चों वाली औरतों के पास उनके बच्चे होते थे। उनके मर्दों के पास बच्चों का सामान। किसी का बच्चा बहुत छोटा हो तो उसके मां-बाप छोटी-सी चारपाई का झूलना अपने साथ लेकर चलते थे। ताकि काम करते समय बच्चे को उस पर लिटाया जा सके।

और इस प्रकार यह काफिला चलता था। कोई विशेष बात न हो तो सब लोग गाते चलते थे।

लालचन अकेला था अभी उस बस्ती में। बस्ती के लोग अधिकतर उसके अपने ही गांव के थे। कभी-कभी तो लगता था कि उसका सारा गांव ही राजस्थान की पहाड़ियों से नीचे उतर आया है। पर कुछ लोग उनके आस-पड़ोस के गांवों के भी थे। लालचन के रिश्ते में बहुत सारे भाई और उनके परिवार थे यहां। पर स्वयं वह अकेला ही था। जिसके साथ चलने वाली पत्नी न हो, जिसका खाना घर पर न पकता हो—वह अकेला ही था इस बस्ती में।

सब जानते हैं कि लालचन अकेला है। और सब जानते हैं कि सर्दी-गर्मी, धूप-बरखा में लालचन सारे रास्ते क्यों गाता चलता है।

रांगली भी समझती है इस बात को। इसलिए वह लालचन से दूर-दूर चलती है। किसी दिन लालचन दिखाई न पड़ रहा हो या उसकी आवाज सुनाई न दे तो वह उदास हो जाती है। उसको देखने को उसका मन मचलने लगता, कान उसकी आवाज़ को कहीं से चुग लेना चाहते हैं। पर जब वह दिखाई देता है—तो सारे दल में रांगली उससे इतनी दूर चलती है, जितनी दूर चलना सम्भव हो। जब कभी वह गाता है तो उसकी आवाज में कभी अपना स्वर नहीं मिलाती, चाहे सारी बस्ती ही उसके

साथ क्यों न गा रही हो।

रांगली लालचन की बात तो समझती है पर अपने मन की बात नहीं समझती। सवेरे बस्ती से चलते हुए जब सब लोगों के हाथ में दोपहर का खाना होता है और लालचन खाली हाथ होता है तो उसके जी में आता है कि वह अपने खाने के साथ उसके लिए भी चार टुक्कर रख लिया करे। पर जब कभी वह उससे बात करने का प्रयत्न करता है तो वह ओढ़नी और लहंगे को सम्भालती हुई ऐसे जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा देती है, जैसे उसके पीछे कोई जंगली भैंसा डकराकर दौड़ पड़ा हो। दोपहर को जब सब लोग किसी पेड़ की छाया में बैठे खाना खा रहे होते हैं और लालचन इधर-उधर बौराया-बौराया डोल रहा होता है, या बाज़ार से कुछ खा आने की तैयारी कर रहा होता है तो रांगली का मन चीत्कार कर उसे अपने पास बुला लेना चाहता है। पर उसका गला सूख जाता है और वह टुक्कर कम खाती है, पानी अधिक पीती है। लालचन कभी किसी की रोटी में एक-आध गस्सा खा ले तो रांगली की छाती पर सांप लोट जाता है—पर वह उसे फटकार नहीं पाती।

कितनी बार रांगली के मन में आता है कि वह लालचन की झुग्गी को झाड़-बुहार आए। पर जब कभी उसके भैया-भाभी उससे लालचन के बारे में कुछ पूछते हैं तो वह सब दर्द-लिहाज छोड़कर, उनका मुंह नोचने को पड़ती है।

. आज सवेरे भी लालचन सारी टोली के आगे-आगे उसी प्रकार गाता हुआ काम पर गया था। और रांगली, सबके पीछे वाली कतार के एक कोने से उसका पीछा करती आयी थी। उसके कान उसके स्वरों को पीते गए थे।

पर काम पर जाते ही मेट ने सबको बता दिया था कि यह सड़क लगभग पूरी बन चुकी है। बस, दो-एक दिन का काम और था।

इसका मतलब साफ था कि सारी बस्ती दो-एक दिनों में फिर से बेकार होने जा रही थी। उन्हें नये सिरे से काम खोजना होगा!

यह बात नयी नहीं थी। सारी बस्ती में किसी की भी कभी पक्की नौकरी नहीं लगी थी। सब लोग इसी प्रकार काम करते थे। कभी मकान

बनाने का। कभी सफेदी करने का। कभी सड़क बनाने का और कभी खुदाई का। महीना-दो महीने काम चलता था और सबकी नौकरी छूट जाती थी। सब लोग फिर से नया धन्धा ढूंढ़ते हैं। दो-एक महीनों में वह भी छूट जाता है।

अब तो सब लोग इसके आदी भी हो गए हैं। एक धन्धा छूटने पर दूसरे की खोज करते हैं। चिन्तित कोई नहीं होता।

पर लालचन अभी तक इस बात का अभ्यस्त नहीं हुआ है। हर बार नौकरी छूटने पर वह चिन्तित हो जाता है और उसका मन डूबने लगता है···

वैसे तो सारी बस्ती का प्रयत्न यही होता है कि सब लोग, एक साथ, एक ही जगह काम करें। बहुधा उनको काम एक ही स्थान पर मिल भी जाता है। कुल पैंतीस-चालीस लोग ही तो हैं और हाथ-पैर से काम करने वाले को काम की कमी नहीं है। अब तक बहुत कम ही ऐसा हुआ है कि उन्हें अलग-अलग काम करना पड़ा हो। पर फिर भी···

यदि लालचन को वहां काम न मिल सका, जहां रांगली काम करती हो, तो लालचन काम नहीं कर सकता। ऐसी जगह वह काम करेगा ही नहीं। इसलिए हर बार काम छूटने पर वह उदास हो जाता है···

आज सवेरे से—जब से मेट ने काम के समाप्त होने की बात कही है—लालचन उदास भी है और चिन्तित भी।

लालचन अपनी टोली के साथ वापस बस्ती को नहीं लौटा था। पांच बजे, जब काम समाप्त हुआ तो लालचन सबसे अलग बाज़ार की ओर चला गया था। वह बाज़ार गया था खाना खाने। पर बहुत देर तक इधर-उधर भटककर वह बिना कुछ खाए-पिए ही बस्ती की ओर लौट आया था···

1

रेल के पुल के पीछे एक बहुत ऊबड़-खाबड़ मैदान है—वही लालचन की बस्ती है।

सारी बस्ती में बीस-पच्चीस झुग्गियां हैं। बांस-टीन, पेड़ों की टहनियों,

पत्रों और पत्तों की चटाइयों से मिलाकर ये झुग्गियां बनायी गयी हैं। कहीं-कहीं मिट्टी का भी प्रयोग हुआ है। पर बहुत कम !

बस्ती में पैंतीस-चालीस लोग काम करने वाले हैं। कुछ बूढ़े हैं, कुछ बच्चे। बूढ़े और खेलने वाले बच्चे पीछे रह जाते हैं। शेष सब लोग गोदी के बच्चों समेत काम पर चले जाते हैं। दिन-भर यहां सन्नाटा छाया रहता है। बूढ़े पड़े बीड़ियां पीते रहते हैं और बच्चे खेलते हुए कभी शान्ति पथ के बड़े-बड़े भवनों की ओर चले जाते हैं, कभी रेल की लाइन से कोयले चुन लाते हैं, और कभी-कभी मोती बाग बस-स्टैंड की ओर से, अवसर पाने पर भीख मांग लाते हैं।

लालचन जब लौटा तो बस्ती में बहुत सारा शोर हो रहा था।

हर झुग्गी से धुआं उठ रहा था। औरतों ने आते ही चूल्हे सम्भाल लिये थे। खेलने वाले बच्चे खेलकर लौट आये थे और कान-फाड़ शोर मचा रहे थे। छोटे बच्चे मर्दों ने उठा रखे थे और वे गोद में भी चीख रहे थे। मर्द आपस की बातों में उलझे हुए थे। बच्चों की ओर उनका ध्यान नहीं था।

लालचन को अपनी बस्ती में कुछ नया-नया-सा लगा। आज शायद ही कोई मर्द अपनी झुग्गी में था। सब ही बीच में खाली स्थान पर जमा थे और ऊंची आवाज़ में बातें कर रहे थे।

इस स्थान पर बड़े काका का खटोला सदा ही बिछा रहता था। बड़े काका बस्ती में सबसे बूढ़े और सबसे अधिक खांसने वाले व्यक्ति थे। दिन-भर अपने खटोले पर पड़े खांसते रहते थे।

आज सब उसी खटोले को घेरे हुए थे।

कहीं बड़े काका मर तो नहीं गए—लालचन ने सोचा—पर नहीं। किसी के मरने पर लोग चुप हो जाते हैं, इस प्रकार चीखते नहीं !

तभी उसने बड़े काका की ज़ोर से खांसने की आवाज़ सुनी।

नहीं, प्राण गए नहीं अभी—उसने सोचा।

लालचन पास आया।

उसने सुना, चौथराम कह रहा था, "यहां पड़े हैं, तो किसी का क्या लेते हैं। हम कब कहते हैं कि यह धरती हमारी है, जिसकी है वह आए

तो हम कहीं और चले जाएंगे। पर जब तक सपाट पड़ी है, तब तक हमें रहने क्यों नहीं देते।"

जीतमल बोला, "उनको भय है, हम यहां हवेली बना लेंगे। भगवान् खाने को दे दे, बहुत है। हवेली कौन बना सकता है···"

लालचन ने और कुछ सुनने की ज़रूरत नहीं समझी। ऐसी बातें बहुत होती थीं। आए दिन ही कोई-न-कोई सरकारी आदमी आकर उनको झुग्गियां हटाने के लिए कह जाता था।

जिस दिन भी कोई आता उस दिन शाम को बस्ती में इसी प्रकार शोर हुआ करता था।

पर लालचन को कुछ नहीं लगा। उसे लगा, जब काम ही छूट गया तो झुग्गी का क्या। तोड़ दे सरकार, इसे भी तोड़ दे···।

2

ओम्प्रकाश जब मोती बाग के आखिरी फ्लैट से बाहर निकला तो काफी झल्ला गया था।

'सब नवाब हैं साले।' उसने मन-ही-मन सोचा 'इनकी मां···'

उसे इस तरह का काम कभी पसन्द नहीं आया था। पर यह काम है कि उसे ढूंढ़ता फिरता है।

उसके जी में आया कि हाथ में पकड़े रजिस्टर के वह चिथड़े उड़ा दे। पर नहीं, सारा रजिस्टर फाड़ने की ज़रूरत नहीं थी। एक पृष्ठ निकाले और उसमें से एक-एक नाम को पढ़ता हुआ देखे कि किस-किस परिवार में कौन-कौन-सी युवतियां हैं।

दूसरे ही क्षण उसने इसका विचार भी छोड़ दिया। वह राशन कार्ड बनाने आया होता तो उसके पास पूरी सूचना होती—सोलह से बीस वर्ष की आयु की नवयुवतियों की भी। उनके नाम, उनके पते, उनका वय···। पर वह तो वोटरों की लिस्ट बनाने आया था।

"वोटर—मतदाता।" उसने अपने आपको बताया, "जिनकी आयु इक्कीस वर्ष से अधिक हो। और इक्कीस वर्ष से अधिक की युवतियां अधिकांशतः विवाहित थीं। नो यूज़ मिस्टर ओम्प्रकाश। इट इज़

यूज़लेस ।"

वह सुबह से इस क्षेत्र में काम कर रहा था। हर घर में उसे नौकरों का सामना करना पड़ा था। नौकर या तो कुछ बताते नहीं थे, या उन्हें कुछ पता ही नहीं था। जब नौकर नहीं बता पाते तो साहब या मेम साहब का आगमन होता था।

और वह प्रश्न करता—

"आपके परिवार में कितने सदस्य इक्कीस वर्ष से ऊपर हैं?"

उसे इस प्रकार घूरा जाता, जैसे पूछा जा रहा हो—आपसे मतलब?

जब वह नाम, विवाहित-अविवाहित, ठीक-ठीक आयु इत्यादि पूछता तो लोगों के मुख पर वितृष्णा या अनन्त यातना के चिह्न उभर आते। उसके जी में आता, उन्हें एक चांटा रसीद करके कहे, 'बदतमीज़ो! मैं अपने शौक के लिए यह कार्य नहीं कर रहा। सरकार की ओर से भेजा गया हूं। तुम्हारा नाम लिखूंगा तो तुम्हें मत देने का अधिकार मिलेगा। मैं वोटरों की लिस्ट बनाने आया हूं।'

पर ऐसी बात वह कह नहीं सकता था। उसने अपनी आंखें बन्द कर ली थीं—केवल कान खुले रखे थे। जो कुछ सुनता, लिखता जाता।

वह नहीं जानता था कि लोग उसे सच-सच बता रहे हैं या मनगढ़ंत बातें लिखाते जा रहे हैं, पर कोई उपाय नहीं था। वह यह नहीं कह सकता था कि उसे घर के सारे सदस्यों को दिखाया जाए—सब लोग तो घर में होते भी नहीं हैं। कोई काम पर गया होगा, कोई किसी से मिलने गया होगा—कोई बाज़ार गया हो, कोई घूमने ही गया हो···

एक घर में उसने साहस किया भी था!

उस घर में मेम साहब नहीं, एक माताजी आयी थीं, उसके प्रश्नों का उत्तर देने के लिए। माताजी ने जब अपने चार बेटों और दो बेटियों के नाम लिखाए—जो सबके सब इक्कीस वर्षों से अधिक थे तो ओम्प्रकाश का मन खटक गया।

उसने एक बार परिस्थितियों को तौला। माताजी बहुत तेज़-तर्रार नहीं लग रही थीं। बहुत पढ़ी-लिखी भी नहीं दीखती थीं। शायद इनसे पूछा जा सकता है। उत्तर नहीं भी देंगी तो क्या हुआ! ज़्यादा-से ज़्यादा

टाल ही देंगी न !

ओम्प्रकाश ने माताजी की ओर देखा, "माताजी ! मैं आपके बेटों से मिल सकता हूं ?"

उसने अपने स्वर को बहुत नम्र बनाया था।

माताजी ने हाथ में पकड़ी ऐनक नाक पर रखी। उसके शीशों के भीतर से एक बार घूरकर उसे देखा और बोलीं, "चीफ एलेक्शन कमिश्नर सुन्दरम को भेज दो, तो मिला दूंगी।"

ओम्प्रकाश अटपटा गया और बाहर चला आया। बाहर आकर सांस ली। पसीना पोंछा। रजिस्टर देखा तो कुछ एक अधूरी बातें लेकर ही वह उस फ्लैट से निकल आया था।

'चलो फिर सही।' उसने सोचा।

अभी झुग्गियों की बस्ती में भी उसे जाना था।

झुग्गियों की बस्ती में वह सवेरे भी आया था। पर तब इस बस्ती में कोई था ही नहीं। सब लोग काम पर जा चुके थे। कुछ बूढ़े थे और कुछ बच्चे ! उनसे न वह ही कुछ पूछना चाहता था, न वे ही कुछ बता सकते थे।

वह लौट गया था।

इस समय बस्ती के पास पहुंचते ही, हर झुग्गी से उठते धुएं तथा बच्चों तथा बूढ़ों की चीख-पुकार से वह समझ गया था कि वे लोग काम से लौट आए हैं।

वह ठीक समय पर आया है—उसने सोचा !

बस्ती में घुसते ही बहुत सारे लोगों ने उसे घेर लिया था। पर उसने उनसे बात नहीं की। न ही उन लोगों ने ही उससे कुछ पूछा। वह चुपचाप आगे बढ़ता जा रहा था और वे भी उसे घेरे हुए साथ-साथ चल रहे थे।

उसे लगा, वह मतदाताओं की सूची बनाने वाला एक सरकारी क्लर्क नहीं है, बल्कि···बल्कि···शायद एक नेता है। उसका कैसा स्वागत हो रहा था यहां !

लोगों के मुख पर कुछ-कुछ घबराहट, भय तथा जिज्ञासा के चिह्न थे। केवल एक ओम्प्रकाश ही आश्वस्त था उस सारी भीड़ में। केवल

वही जानता था कि यहां वह किसलिए आया है।

ओम्प्रकाश के मन की सारी झल्लाहट घुल गयी थी। मोती बाग के बड़े-बड़े फ्लैटों में वह एक तुच्छ क्लर्क के रूप में गया था और यहां उसकी स्थिति एक सरकारी अफसर की-सी थी। यहां उसे किसी से कोई भय नहीं था। जिससे जो चाहेगा, पूछेगा। जिसे देखना चाहेगा, देखेगा!

वह बस्ती के मध्य में पड़े एक खटोले के पास जाकर रुक गया। उस पर एक बूढ़ा बैठा हुआ उसे आंकने का प्रयत्न कर रहा था। उसके मुख के भाव से लगता था कि उसे साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ रहा।

ओम्प्रकाश के रुकने पर सारी भीड़ रुक गयी थी।

उसने देखा, सब लोग उसे घूर रहे हैं। आगे-आगे बच्चे हैं और उनके पीछे पुरुष हैं। कुछ ने गोद में बच्चे उठा रखे हैं और कुछ छाती पर हाथ बांधे खड़े हैं। उनके भी पीछे कहीं-कहीं किसी स्त्री का घेरदार लहंगा दिखाई पड़ रहा था। सब लोग सांस रोके, उसके बोलने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

वह उस बूढ़े के खटोले पर बैठ गया। अपने रजिस्टर को उसने गोद में रख लिया और दाहिने हाथ की तर्जनी से उसे खटखटाता हुआ बोला, "मैं सरकार की ओर से इस रजिस्टर में आपके नाम लिखने के लिए आया हूं।"

उसने देखा, उन सब चेहरों पर एक त्रास और स्तब्धता पुत गयी।

धीरे-धीरे मर्मर उभरी और फिर कुछ आवाज़ें उठीं—

"क्यों?"

"पर क्यों?"

"हम नहीं लिखाएंगे नाम-धाम।"

और उन सारी आवाज़ों के ऊपर एक स्त्री उभरी। वह काफी हृष्ट-पुष्ट थी। लाल छींट का बहुत बड़ा घेरदार लहंगा उसने पहन रखा था और काली पूरी बांहों की चोली थी। सिर पर उसने मुस्से लाल रंग की ओढ़नी ले रखी थी। ओम्प्रकाश उसका मुख नहीं देख सका। उसका घूंघट काफी लम्बा था।

"ऐ बाबू!" वह ओम्प्रकाश के बहुत निकट आ गयी थी, "अपना पोथी-पतरा लेकर चुपचाप चले जाओ। नहीं तो हम ही फिकवा देंगे।"

"हां, फिकवा देंगे!" बहुत सारे मर्दों ने बड़े डरे-से स्वर में उसका

साथ दिया।

ओम्प्रकाश इस प्रतिक्रिया के लिए तैयार नहीं था। पर आतंकित नहीं हुआ। वह मर्दों की आवाज़ की भीरुता को स्पष्ट पहचान रहा था।

"पर क्यों?" वह हंसने की चेष्टा कर रहा था।

लालचन ने देखा, जाने कब रांगली आकर उस भीड़ के एक कोने में खड़ी हो गयी थी। ऐसा अवसर फिर नहीं मिल सकता—उसने सोचा।

आगे बढ़कर बोला, "बाबू! हम क्या छीन रहे हैं किसी का। क्यों अपना भी टेम खराब करते हो। कल भी एक सरकारी आदमी आया था। हम कहे देते हैं। झुग्गियों को कोई हाथ नहीं लगा सकता।" उसने मुड़कर एक गर्वभरी दृष्टि रांगली पर डाली। हां, रांगली उसे देख रही थी।

"झुग्गियों की क्या बात है?" ओम्प्रकाश ने रुचि लेते हुए पूछा।

अब और लोगों का आतंक भी कुछ कम हो गया था। जीतमल आगे बढ़ आया। बोला, "कल भी एक सरकारी बाबू आया था। कह रहा था, सरकार हमारी झुग्गियां गिराना चाहती है।"

"मैं इसलिए नहीं आया।" ओम्प्रकाश ने उन्हें समझाया, "मैं दूसरे काम के लिए आया हूं।"

"क्या काम है?" बूढ़े काका ने पहली बार प्रश्न किया।

"देखो, बाबा!" ओम्प्रकाश बोला, "हर पांच साल के बाद जनता से पूछा जाता है कि वह किस पार्टी की सरकार चाहती है। मैं उसी के लिए नाम लिखने के लिए आया हूं। मैं तुम्हारे नाम लिखकर ले जाऊंगा, तो तुम लोगों से भी पूछा जाएगा कि तुम लोग किसकी सरकार चाहते हो।"

"तुम भोट के लिए आये हो?" बूढ़े ने पूछा।

"हां।" ओम्प्रकाश को अपना काम आसान होता लगा, "तुम वोट समझते हो?"

"हां।" बूढ़े ने सिर हिलाया, "पिछली बार मैंने भोट दिया था।"

भीड़ में एक शोर-सा मच गया। सब लोग जानना चाहते थे कि भोट क्या होता है। जो जानते थे वे शेष लोगों को समझा रहे थे।

शोर धीमा हुआ तो ओम्प्रकाश ने पूछा, "तो अपने नाम लिखाओगे न?"

"नहीं ।" चौथराम चीखकर बोला, "तुम कहते हो तो हम वोट दे आएंगे, पर नाम नहीं लिखाएंगे ।"

ओम्प्रकाश के जी में आया, जोर से डांट दे एक बार, 'अनपढ़ जंगली साले !' पर डांटने से काम आसान नहीं होगा ।

एक क्षण बाद मुसकराकर बोला, "मैं इस रजिस्टर में लिखूंगा कि तुम लोग यहां के रहने वाले हो। उस पर सरकारी मुहर लग जाएगी। फिर तुम्हें यहां से कोई नहीं हटाएगा ।"

उपस्थित भीड़ के मुख से चिन्ता की खरेपड़ियां उतर गयीं और खुशी का चूना पुत गया ।

"अब लिखाओगे कि नहीं ?" उसने एक प्रकार से धमकाकर पूछा ।

किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। पर ओम्प्रकाश समझ गया कि अब सब लोग तैयार थे ।

थोड़ी देर में हर आदमी आकर अपना और अपने घर वालों का नाम और वय लिखा रहा था ।

लालचन ने लिखाया—"नाम लालचन, बाप का नाम मुज्जामल । उमर—22 साल । मुज्जामल का नहीं, मेरा···लालचन का ।"

"और तुम्हारी घर वाली ?" ओम्प्रकाश ने पूछा ।

लालचन का मुंह लज्जा से लाल हो गया—यह सरकारी रजिस्टर वाला बाबू क्या पूछ बैठा !

वह बिना कोई उत्तर दिये लौट आया ।

3

सिपाही मिट्ठालाल ने निकर के नीचे से हाथ डालकर कमीज को खींचा। सड़क पर पैर पटककर बूटों की धूल झाड़ी—'ऐ मैंण···'

वह जाने के लिए तैयार था ।

मिट्ठामल की तबीयत सवेरे से ज़रा सुस्त थी। उसने सोच रखा था, वह अस्पताल जाकर डॉक्टर साब को सैलूट मारेगा। डॉक्टर साब मुसकराकर पूछेंगे, "क्यों जवान ?" मिट्ठालाल भी मुस्कराकर कहेगा, "साब ! तबीयत खराब है ।" डॉक्टर साब उसकी बात समझ जाएंगे ।

चुपचाप कागज़ पर लिख देंगे। मिट्ठालाल पूछेगा, "कितने दिन की रेस्ट है साब ?" डॉक्टर साब कहेंगे, "अभी दो दिन का लिखा है, बाकी फिर लिखा लेना।"

"अच्छा साब !" मिट्ठालाल सैलूट मारकर आ जाएगा।

और फिर दो दिन आराम से पड़ा रहेगा। डूटियों की झिकझिक से बच जाएगा।

पर डॉक्टर साब के पास जाने से पहले ही उसे खबर मिली थी कि कारपोरेशन का इंतज़ाम आया है। डिमोल्शन स्केड की डूटी थी।

एक बार जी में आया कि जल्दी से रेस्ट लिखा ले, पर दूसरे ही क्षण उसने विचार बदल दिया।

डिमोल्शन स्केड की डूटी में ज़नाना पुल्स भी साथ जाती है तो झुनझुना देवी भी जाएंगी और इधर होगा सब-इंस्पेक्टर रंगबहादुरसिंह ! नहीं। उसका जाना ज़रूरी है। डिमोल्शन स्केड की डूटी में हमेशा इस साले रंगबहादुरसिंह की ऐश होती है। और झुनझुना देवी ! मिट्ठालाल का खून एक बार ही गरम हो गया। एक बार अकेली मिल जाए···बस पंद्रह मिनट ! फिर मिट्ठालाल खुद ही नौकरी छोड़कर झुनझुना को रंगबहादुर की गोद में डालकर चला जाएगा।

मिट्ठालाल की नसों के तनाव ने उसे डॉक्टर के पास रेस्ट लिखाने के लिए जाने नहीं दिया। उसने वर्दी पहनी। सोटी हाथ में ली और चल पड़ा।

डूटी-रूम के सामने कारपोरेशन का ट्रक खड़ा था।

मिट्ठालाल ने सब-इंस्पेक्टर रंगबहादुरसिंह को सैलूट मारा, "जयहिन जनाब !" चिट्ठा मुंशी के पास जाकर डूटी वाले कागज़ पर सैन किया। और जाकर ट्रक में बैठ गया। ट्रक में नौ सिपाही और पांच मज़दूर पहले से बैठे हुए थे। मिट्ठालाल समझ गया कि छोटा-सा ही काम है।

थोड़ी देर में लेडी हेड कांस्टेबल मोटी हरजीतकौर के साथ झुनझुना देवी और तीन और लेडी कांस्टेबलें आयीं। सिपाही को 'जवान' कहा जाता तो इन औरत सिपाहियों को 'जवानी' क्यों नहीं कहा जाता—मिट्ठालाल अकसर सोचता है।

सैलूट के बाद जब जवानियां भी ट्रक में बैठीं तो ट्रक चल पड़ा।

मिट्ठालाल एकटक झुनझुना देवी को घूर रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद वह अपने होंठों पर जीभ फेर लेता था।

सब-इंस्पेक्टर रंगबहादुरसिंह आगे डरैवर के साथ बैठा हुआ जलभुन रहा होगा।

ट्रक इंक्वैरी ऑफिस के पास से होता हुआ राजपुर रोड पर निकल आया था। कश्मीरी गेट के पास से होकर जब ट्रक रिंग रोड पर आया तो मिट्ठालाल जान गया कि कहीं दूर जाना है। उसे थोड़ा सुकून मिला। इसका मतलब है—वह काफी देर तक झुनझुना देवी को ऐसे ही घूर सकता है। हैड कांस्टेबल हरजीतकौर वहां न होती तो शायद मिट्ठालाल झुनझुना देवी को अपनी गोद में बैठने का इशारा भी कर देता। पर हरजीतकौर ! वह औरत है तो क्या हुआ ! हैड कांस्टेबल है। वह जानता था कि वह उसे थप्पड़ भी मार सकती है।

उसने एक लम्बी सांस छोड़ी और शरीर का अकड़ाव दूर करने के लिए अपनी टांगें पसारकर, हाथों को ऊपर उठा शरीर को एक ज़ोर का झटका दिया।

उसने सब-इंस्पेक्टर रंगबहादुरसिंह की बात सोची। सफर लम्बा हुआ तो मादर···का आधा खून रास्ते में ही जल जाएगा···

ट्रक अब नीति-मार्ग को छोड़कर शांति-पथ पर आ गया था।

रेलवे पुल पार करके ट्रक ने सड़क छोड़ दी और साथ के मैदान में मुड़ गया। आगे की जगह काफी ऊबड़-खाबड़ थी। आगे नहीं जा सकता था, इसलिए ट्रक रुक गया।

झुग्गियां वहां से कुल दस-बारह गज़ की दूरी पर थीं।

मज़दूरों ने अपने कुदाल इत्यादि सम्भाल लिए और ट्रक से उतर गए।

सब-इंस्पेक्टर रंगबहादुरसिंह भी ट्रक से उतरकर उनके पास आ गया था। झुनझुना देवी पर नज़र टिकाकर वह मज़दूरों से बोला, "चलो।"

झुनझुना देवी ने एक बड़ी-सी मुस्कान सब-इंस्पेक्टर की ओर उछाल

दी।

"हत साली !" मिट्ठालाल का खून जल गया, "आज रात इंस्पेक्टर की ऐश है।"

मज़दूर अपनी कुदाल सम्भालकर चले गए थे और झुग्गियों के पास पहुंचकर चुपचाप खड़े हो गए थे। सिपाही भी ट्रक से उतरकर मैदान में टांगें सीधी कर रहे थे।

इंस्पेक्टर के मुंह फेरते ही मिट्ठालाल ने इधर-उधर देखकर हल्के से झुनझुना की ओर एक 'चुम्मी' हवा में उछाल दी। 'मेरी जान !' होंठों में वह बड़बड़ाया।

और दूसरे ही क्षण वह कूदकर नीचे उतर आया। उसे भय लगा, कहीं हरजीतकौर अपनी छड़ी से उसे पीटना ही न शुरू कर दे।

नीचे पहुंचकर वह पलटा। झुनझुना उसकी ओर देखकर हंस रही थी। उसकी छाती में आग तैरने लगी।

थोड़ी देर में सब-इंस्पेक्टर रंगबहादुरसिंह लौट आया और हरजीतकौर से बोला, "हेड कांस्टेबल ! तुम लोग चलो। मर्द तो चुप हैं। औरतें गड़बड़ कर रही हैं।"

मिट्ठालाल भी उनके साथ ही झुग्गियों के पास आया।

झुग्गियों के बीचोबीच भीड़ जमा थी। मज़दूर अपनी कुदालें पकड़े चुपचाप खड़े थे।

जगह-जगह चूल्हे जले हुए थे। लगता था, औरतें रोटी पकाती-पकाती उठ आयी हैं।

हरजीतकौर बीच में खड़ी होकर डपटकर बोली, "क्या बात है ?"

एक मोटी-सी औरत आगे बढ़ आयी, "म्हारी झुग्गी क्यों तोड़ो ?"

"सरकार का हुकुम।" हरजीतकौर अफसरों की तरह बोली, "यह ज़मीन तुम्हारे बाप की नहीं है। इस पर तुम लोगों ने अपनी झुग्गियां क्यों बनायीं ?"

"तो परसों शाम को बाबू क्यों आया ?" लालचन आगे बढ़ आया था, उसने भीड़ में खड़ी रांगली को देख लिया था।

"कौन बाबू ?" इस बार सब-इंस्पेक्टर ने पूछा।

"वो बोला। हम सब यहां रहें। सरकार को म्हारा ओट चाहिए। म्हारा सबका नाम लिखा। फिर म्हारी झुग्गी क्यों गिराओ?" जीतमल ने आगे बढ़कर कहा।

"देखो!" सब-इंस्पेक्टर की रौबदार आवाज़ गूंजी, "हम किसी बाबू को नहीं जानते। सरकार का हुक्म है, ये झुग्गियां यहां नहीं रहेंगी। इसलिए हम इन्हें गिराने आये हैं। तुम लोग अपना-अपना सामान बाहर निकाल लो। ये मज़दूर इन झुग्गियों को गिरा देंगे। जो उन्हें रोकने की कोशिश करेगा, उसे ये जवान पकड़ लेंगे।"

एक सन्नाटा-सा तैर गया। रोते हुए बच्चे भी चुप हो गए थे।

"निकालो अपना सामान!" सब-इंस्पेक्टर ने फिर कहा।

"म्हारे बाल-बच्चे कहां रहेंगे?" मोटी औरत ने फिर पूछा।

"यह दिल्ली में आने से पहले पूछ लिया होता।" सब-इंस्पेक्टर ने कहा और घूमकर मज़दूरों से बोला, "चलो!"

एक बार फिर से शोर मच गया। मर्द झुग्गियों में से अपनी चीज़ें समेट रहे थे। औरतें बैठी रो रही थीं और बच्चे चीख रहे थे।

मज़दूरों ने कुदाल चलाया तो वही मोटी औरत फिर चपाटे से आगे आयी। एक मज़दूर को उसने धक्का दिया। मज़दूर असावधानी में डगमगा गया।

हरजीतकौर दांत पीसती हुई आगे बढ़ी। उसने मोटी औरत को कंधे से पीछे खींचकर उसके गाल पर ज़ोर का तमाचा मारा।

सिपाहियों ने अपनी लाठियां सम्भाल लीं।

मिट्ठालाल झुनझुना देवी के पास आ गया था। पर सब-इंस्पेक्टर आकर उनके बीच में खड़ा हो गया।

लालचन भी रांगली के समीप पहुंच गया था। स्थिति एकदम तन गयी थी।

मोटी औरत अपने गाल पर हाथ रखे स्तम्भित-सी खड़ी रह गयी। और अचानक वह ज़ोर से चीखकर रो पड़ी, "मार दियो री···अरे मैया! मार दियो री!"

एक आदमी ने बढ़कर उसे पकड़ लिया, "छोड़ दे री! जहां सबके

छोरे-छोरियां रहेंगे, वहां हमारे भी रह लेंगे।"

औरतें फिर ज़ोर से रो पड़ी थीं।

बच्चे फिर चीख रहे थे।

मर्दों ने अपना सामान बांध लिया था, पर लालचन के पास कोई सामान नहीं था।

मज़दूरों ने मिनटों में झुग्गियां ज़मीन पर लिटा दीं और हाथ झाड़कर अलग खड़े हो गए।

"अब यहां झुग्गियां मत बनाना। समझे ?" सब-इंस्पेक्टर ने रौबदार आवाज़ में कहा, "आओ, चलें।" वह अपने साथियों की ओर मुड़ा।

और बड़े अनजाने ढंग से उसने झुनझुना के कंधे पर हाथ रख दिया, "चलो।"

सिपाही मिट्ठालाल ने जलकर झुनझुना के कूल्हे पर चिकुटी काटी।

झुनझुना खिड़-खिड़ हंस रही थी।

मिट्ठालाल सोच रहा था, वह किसके लिए हंस रही है। आज रात शायद पता लग जाए।

पुरुषों की क्रुद्ध दृष्टि और स्त्रियों और बच्चों की चीखों ने बहुत दूर तक उनका पीछा किया।

4

चौधरी फुलवारीलाल का बेटा चौधरी गुलजारीलाल बहुत दिनों तक परेशान रहा था।

अपने पापा के चलते, वैसे तो वह बचपन से ही परेशान रहा था, पर जब से वह चुनाव में खड़े हो गए थे तब से चौधरी फुलवारीलाल और उनका बेटा गुलजारीलाल ही परेशान नहीं थे—सारे ही चौधरी परेशान हो उठे थे।

पर चौधरी गुलजारीलाल सबसे ज़्यादा परेशान था।

वैसे ही कम काम नहीं हैं इस साले पापा के पास—वह सोच रहा था, ऊपर से और ऊल-जलूल काम ले बैठता है। अब यह भी भला कोई काम है ! साले बंजारों के पीछे लगा दिया। और वो साले अपनी मां की···साथ

लेकर चल दिए यहां से।

मतदाताओं की सूची साथ लिये चौधरी गुलजारीलाल की मोटरों को बहुत चक्कर काटने पड़े थे। पूरे चालीस वोट थे और साले पापा का खयाल था कि उनके वोट बहुत मज़े में मिल सकते हैं। पापा उनके वोटों को छोड़ना नहीं चाहता था।

बहुत ढूंढ़ने के बाद पता चला था कि वे चालीस वोटर अब इंकमटैक्स ऑफिस के पीछे रिंग रोड के उस पार झुग्गियां बनाकर रह रहे हैं। उन लोगों को वहां बनती बिल्डिगों में काम मिल गया था। और अब चौधरी गुलजारीलाल की कार उधर ही जा रही थी।

सूर्य डूब रहा था और चौधरी के क्लब जाने का समय हो रहा था। पर साला पापा और ये हरामी वोटर! हद हो गयी—उसने सोचा—दिन को ये उल्लू के पट्ठे कभी नहीं मिलेंगे। रास्कल्स! शाम को ही मिलेंगे अपनी झुग्गियों में। शाम को क्लब जाने के समय—पीने-पिलाने के समय! बोर कर दिया सालों ने···यह डिमोक्रेसी साली भी कैसी बेहूदा चीज़ है। किन-किन सालों के आगे नाक रगड़नी पड़ती है। और साले इस पापा का भी दिमाग खराब है।

अपनी नयी चमकीली कार को रिंग रोड से उतारकर ऊबड़-खाबड़ मैदान में चलाना चौधरी गुलजारीलाल को अच्छा नहीं लग रहा था, पर कार का रौब पड़ने पर काम आसान हो जाएगा—वह जानता था।

उसने झुग्गियों के एकदम पास जाकर अपनी कार रोकी।

कार के रुकते ही बहुत सारे बच्चों ने उसे घेर लिया। बच्चों ने बहुत पास आकर कार को छू-छूकर देखना शुरू किया। चौधरी फुलवारीलाल का बेटा चौधरी गुलजारीलाल अपनी कार की चमक को गंदे हाथों द्वारा नष्ट किए जाते हुए देखता रहा। कोई और अवसर होता तो शायद इन बच्चों को पीटता। पर इस साले पापा की खातिर···

"राम-राम, भाइयो!" वह झुग्गियों के बीच जाकर, हाथ जोड़कर बहुत ज़ोर से बोला।

"राम-राम!"

"राम-राम!"

बहुत सारे उत्तर आए।

थोड़ी ही देर में बस्ती का हर प्राणी बाहर निकल आया था। उसके चारों ओर भीड़ लग गई थी।

"चौधरी! तुम लोगों से एक बात कहनी है।" गुलजारीलाल ने अपने समीप खड़े व्यक्ति से कहा।

"बोलो!" वे लोग कोरस में बोल उठे थे।

गुलजारीलाल ने अपनी मोटी थुल-थुल देह को किसी प्रकार पास पड़ी खाली चारपाई पर टिकाया। उसने देखा—चारपाई उसका बोझ सह गई थी।

"बड़ों की बात है।" वह बोला, "बच्चों और औरतों को भेज दो।"

बच्चों और औरतों को भेज दिया गया। थोड़ी देर में वहां पुरुष ही बच गए थे।

तब चौधरी गुलजारीलाल ने कहा, "तुम लोग दिन-भर मेहनत करते हो, पर कितने पैसे कमाते हो?"

किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"बोलते क्यों नहीं?" उसने पूछा।

"तुम अपनी बात कहो।" भीड़ में से किसी ने कहा।

"बात यह है···" गुलजारीलाल कुछ सोचकर बोला, "मैं तुम्हारे वोटों के लिए आया हूं।"

"म्हारे लोग सरकार को वोट नहीं देंगे।" लालचन सबसे ज़्यादा चिढ़ा हुआ था सरकार से, "बिलकुल नहीं देंगे।"

"क्यों?" गुलजारीलाल इस रोष से हतप्रभ रह गया।

"सरकार ने पहले हमारे नाम लिखे। फिर हमारी झुग्गियां तोड़ दीं।" बूढ़े काका ने कहा और खांसने लगे।

"अच्छा-अच्छा।" गुलजारीलाल बात समझ गया, "सरकार को वोट मत दो। एकदम मत दो। तुम वोट मुझे दो।"

"तुम हमको क्या दोगे?" जगतूराम अपनी आंखें मिचमिचाकर पूछ रहा था।

"मैं···मैं···" गुलजारीलाल इसीलिए आया था, "मैं हर आदमी को

दस-दस रुपये दूंगा।"

"दस-दस रुपये।"

"हां, दस-दस रुपये!"

"हमको क्या करना होगा?" गेंदासिंह ने पूछा।

"तुमको कुछ नहीं करना होगा।" गुलजारीलाल को अपना काम बड़ा सरल लगा, "मैं यहां आऊंगा। तुमको ट्रक में बैठाकर ले जाऊंगा। तुमको एक-एक कागज़ और एक-एक ठप्पा मिलेगा। उस कागज़ पर जहां मैं कहूं, वहां ठप्पा लगा देना। बस···दस रुपये तुम्हारे।"

"और जो तुमने रुपये नहीं दिए तो?" लालचन ने फिर शंका की।

"अरे, नहीं! तुम अभी ले लो।"

और गुलजारीलाल का हाथ अपनी जेब में रेंग गया। उसने दस-दस के नोटों की एक गड्डी निकाल ली।

थोड़ी देर में वहां वेतन-कार्यालय बन गया।

गुलजारीलाल हर स्त्री-पुरुष का नाम और आयु लिखकर उन्हें एक-एक नोट पकड़ाता जा रहा था।

लोगों के हाथों में नोट आए, तो मुख पर चमक भी आ विराजी।

"तुम हमको ट्रक में वापस भी छोड़ जाओगे न, सेठ?" जीतू फिर आंखें मिचमिचा रहा था।

"क्यों नहीं! क्यों नहीं!"

गुलजारीलाल का काम बहुत सरलता से हो गया था। इतनी सरलता की उसे आशा नहीं थी। कुल चार सौ रुपये का खर्च था और चालीस वोट पक्के। साला पापा भी क्या याद करेगा···

तीन बार राम-राम करके, चौधरी फुलवारीलाल का बेटा चौधरी गुलजारीलाल चुनाव के दिन आने का वचन देकर अपनी कार की ओर लौट आया।

5

संध्या के पांच बज रहे थे।

मिस्टर ए० बी० शर्मा बार-बार घड़ी देख रहे थे और सोच रहे थे कि सरकारी नौकर से बड़ा गधा कहीं नहीं मिलेगा।

मोतीबाग के इस पोलिंग बूथ में प्रीसाइडिंग अफसर क्या बना दिया गया—मन का संतुलन ही छीन लिया गया।

कितने दिन तैयारियों में बीत गए थे। और आज सवेरे से यहां बैठे-बैठे बोर हो रहे थे। आठ बजे से मतदान आरम्भ हुआ था और दस ही बजे, मन-ही-मन, भगवान् को साक्षी मान उन्होंने संकल्प किया कि वे फिर कभी पोलिंग के चक्कर में नहीं पड़ेंगे।

लोगों की अनन्त पंक्ति थी। पता नहीं लोग कहां से आते जा रहे थे। आठ बजे काम आरम्भ हुआ था, फिर सूरज ऊपर उठा। मध्याह्न हुआ। सूरज ढला। पर लोगों की पंक्ति है कि समाप्त ही नहीं होती।

किसी तरह से चार बजे थे, फिर सवा चार, साढ़े चार, पौने पांच और अब पांच बजने वाले थे। धीरे-धीरे बड़ी सुई ने चलते हुए 'बारह' के अंकों को छुआ।

मिस्टर शर्मा ने चपरासी को आवाज़ लगाई, "दरवाज़ा बन्द कर दो।"

और तभी, जिस स्कूल में यह मतदान केन्द्र था, उसके गेट में से एक ट्रक भीतर आया।

मिस्टर शर्मा ने अपनी जगह पर बैठे-बैठे देखा कि ट्रक रुका है। उसमें बहुत सारे आदमी हैं। पहनावे इत्यादि से वे राजस्थान की ओर के मज़दूर लग रहे थे। ड्राइवर की साथ वाली सीट से एक सूटेड़-बूटेड़ व्यक्ति भी उतरा है। और वह उनसे कुछ कह रहा है।

वे समझ गए कि यह व्यक्ति चुनाव में खड़े किसी प्रत्याशी का एजेंट है और इन मज़दूरों को अपने साथ, अपने प्रत्याशी के पक्ष में वोट डलवाने के लिए लाया है।

यह बात मिस्टर शर्मा के लिए नयी नहीं थी। ऐसी-ऐसी बहुत सारी टोलियां दिन-भर में उन्होंने देखी थीं।

चपरासी तब तक दरवाज़े के पास पहुंच गया था और दरवाज़ा बंद कर रहा था।

उस सूटेड़-बूटेड़ व्यक्ति ने चपरासी को द्वार बन्द करते देखा। वह अपने साथ आए उन लोगों से बातचीत छोड़ दरवाज़े की ओर झपटा।

उसने चपरासी से कुछ कहा और चपरासी ने भी उत्तर दिया।

उस व्यक्ति की आवाज़ ऊंची हो गई, "मैं कहता हूं, अभी पांच नहीं बजे हैं।"

"मुझे साहब ने दरवाज़ा बंद करने को कहा है।" चपरासी का उत्तर था।

और वह व्यक्ति बंद होते हुए दरवाज़े के बीच से निकलकर, दौड़ता हुआ मिस्टर शर्मा के सामने आ खड़ा हुआ।

"क्यों साहब! चपरासी दरवाज़ा बंद क्यों कर रहा है?" उसके स्वर में झल्लाहट भी थी और रौब भी।

मिस्टर शर्मा जब से इस कुरसी पर बैठे थे, उनसे इस प्रकार कोई नहीं बोला था।

आवाज़ को कठोर बनाते हुए बोले, "क्योंकि मैंने उसे कहा है।"

"पर आपने अभी से क्यों कह दिया?"

"क्योंकि टाइम हो गया है।"

वह आदमी मिस्टर शर्मा के पास आकर तेज़ आवाज़ में बोला, "पर मेरी घड़ी में अभी पांच नहीं बजे। अभी दस मिनट बाकी हैं।"

मिस्टर शर्मा एकदम नाराज़ हो उठे—"यहां का काम मेरी घड़ी के अनुसार होता है, मिस्टर। आप अब वोट नहीं दिलवा सकते।"

"आपकी ऊपर वालों के पास रिपोर्ट भी की जा सकती है।" उसने कहा।

"जाइए! जहां मर्ज़ी रिपोर्ट कर आइए।" मिस्टर शर्मा ने अपना सामान बटोरना शुरू करवा दिया।

"देखिए।" वह व्यक्ति कुछ नम्र हुआ, "चालीस व्यक्तियों के वोट रह जाएंगे। डिमोक्रेसी में···"

"तो आप समय रहते क्यों नहीं लाए उन्हें?" मिस्टर शर्मा अब भी खीझे हुए थे।

"वो देखिए।" वह व्यक्ति बोला, "हमें बूथ खोजने में देर हो गई। डायरेक्शन का पता नहीं चला।"

"अब कुछ नहीं हो सकता।"

वह व्यक्ति क्षण-भर खड़ा उन्हें घूरता रहा, फिर चुपचाप लौट गया।

चपरासी ने दरवाज़ा भिड़ा दिया।

भीतर सारी चीज़ें समेटी जाने लगीं।

उस व्यक्ति के बाहर जाने के दूसरे ही क्षण बाहर बहुत शोर होने लगा।

मिस्टर शर्मा एकदम सशंक हो उठे। वे लोग चालीस-पैंतालीस व्यक्ति थे और सब-के-सब मज़दूर ! कोई उपद्रव भी हो सकता था।

'पर चिंता की कोई बात नहीं। इतने लोगों को संभालने के लिए यहां काफी पुलिस है।' उन्होंने सोचा।

फिर उन्हें लगा, वह शोर उपद्रव वाला नहीं था। वह तो लगता था, जैसे ऊंचा-ऊंचा बोलकर आपस में ही झगड़ रहे हों।

चपरासियों को कुछ आज्ञाएं देकर वे बाहर बरामदे में चले आए।

वह सूटेड-बूटेड व्यक्ति बीच में खड़ा था और सारे मज़दूर—स्त्रियां और पुरुष—उसे चारों ओर से घेरकर खड़े थे और चीख रहे थे।

"देखो !" वह व्यक्ति उन्हें डांटकर बोला, "शोर मत मचाओ।"

वे सब चुप हो गए।

"तुम यह बताओ।" वह फिर से बोला, "तुम्हें दस-दस रुपये किस बात के दिए गए थे ?"

"भोट के लिए।" बहुत सारी आवाज़ों ने कहा।

"तुमने वोट दिया ?" वह आदमी चीखकर बोला।

"तो इसमें म्हारा क्या दोष ?" एक मोटी-सी औरत कह रही थी।

"हां। म्हारा क्या दोष ?" बहुत सारी आवाज़ों ने दुहराया।

"दोष किसी का भी नहीं है।" वह व्यक्ति बोला, "तुम्हें एक काम के लिए रुपये दिए गए थे। वह काम नहीं हुआ तो अब रुपये वापस करो। चार सौ रुपये ऐसे ही नहीं छोड़े जा सकते।"

"क्यों ?" वह मोटी औरत फिर बोली, "तुम भोट ले लो। म्हारा एक आदमी मना करे तो बोलो।"

"हां-हां।"

और फिर एक शोर मच गया।

मिस्टर शर्मा भीतर चले आए।

भीतर का काम चलता रहा और बाहर शोर होता रहा।

जब भीतर का काम समाप्त कर मिस्टर शर्मा बाहर खड़ी स्टेशन वैगन में बैठे तब भी बाहर उसी प्रकार शोर मच रहा था।

सारे मज़दूर ट्रक में चढ़े बैठे थे और वह व्यक्ति चीख-चीखकर उन्हें नीचे उतरने के लिए कह रहा था।

"म्हारे लोगों को म्हारी झुग्गियों में छोड़ आओ," मज़दूर शोर मचा रहे थे, "नईं तो वापसी का किराया दो।"

"खामोश!" उसने चीखकर कहा, "किसी को कोई किराया नहीं मिलेगा। दस-दस रुपये वैसे खा गए और अब किराया…"

मिस्टर शर्मा की स्टेशन वैगन गेट से बाहर निकलकर सड़क पर आ चुकी थी।

6

लालचन बड़ी देर से खड़ा देख रहा था।

बहुत सारे झगड़े के बाद भी चौधरी गुलजारीलाल का ट्रक उन्हें लौटाकर नहीं ले गया था। मजबूर होकर उन सबको ट्रक से उतरना पड़ा था।

लालचन सबसे पहले उतरा था। उसे लगा था, कहीं देर की तो वे दस रुपये भी न छिन जाएं। जिस दिन से वे दस रुपये मिले थे, वह उनसे रांगली के लिए एक लहंगा खरीदने की बात सोच रहा था। पर पता नहीं रांगली उससे लहंगा लेगी भी कि नहीं। वह कैसे कहेगा उससे लहंगा लेने को!

लालचन के ट्रक से उतरने के बाद एक-एक कर सब लोग उतर आए थे। लालचन को लगा था कि उन सबके मन में भी उन दस रुपयों के छिन जाने का भय होगा।

सबके उतरते ही ट्रक बहुत फर्राटे से स्कूल के अहाते से बाहर निकल गया था।

तभी स्कूल का चौकीदार आया था और उसने इन लोगों को भी बाहर निकाल स्कूल के फाटक पर ताला लगा दिया था।

अब वापस अपनी झुग्गियों तक जाने की समस्या थी।

लालचन के मन में एक अजाना-सा भाव जाग रहा था—क्यों न वे लोग फिर से रेल की लाइन से हटकर अपनी पुरानी जगह पर झुग्गियां बना लें। क्या ज़रूरत है इतनी दूर वापस जाने की।

"अब, भाइयो ?" जीतमल पूछ रहा था।

"मैं तो बहुत थका हूं।" बूढ़े काका ने कहा और खांसते-खांसते वहीं बैठ गए।

"थकी तो मैं भी हूं।" मोटी औरत भी बैठ गई।

सब एक-दूसरे की शक्ल देख रहे थे, कोई भी कुछ नहीं कर रहा था। पर वहां से हिलना कोई नहीं चाहता था।

लालचन मन-ही-मन हिसाब लगा रहा था, इतने लोग बस में वापस जाएंगे तो पंद्रह रुपये खर्च हो जाएंगे। इतने पैसे क्यों खर्च किए जाएं ?

उसने झुकी-झुकी नज़र से देखा—रांगली भी कुछ थकी-थकी लग रही थी।

रांगली का भोट नहीं था। वह अभी छोटी थी, पर फिर भी ट्रक में सैर करने के विचार से वह आ गई थी।

सबके सामने प्रश्न था—अब ?

"क्यों न हम अपनी पुरानी जगह को वापस चले जाएं ?" अंत में लालचन ने सलाह दी।

"और जो म्हारे छोरे-छोरियां वहां हैं ?" चौथराम बोला।

"एक जना जाकर उनको ले आओ।" रांगली के भाई ने कहा।

सब चुप हो गए। सब यही सोच रहे थे।

"और वहां का काम ?" बूढ़े काका ने शंका की।

"दो दिन का काम और है।" लालचन बोला, "आज ही मेट कह रहा था। फिर नया धंधा खोजना होगा। तो कल से ही खोजो।"

"और फिर कोई हमारी झुग्गियां तोड़ दे तो ?"

"वे तो टूटती ही रहेंगी।" लालचन बहुत उत्साह में था, "एक बार कोई हमारी बात नहीं माने तो हम दूसरी बार कोसिस ही नहीं करेंगे क्या ?"

उसने कनखियों से रांगली की ओर देखा।

रांगली ने पलटकर उसे देखा। उसकी आंखों में इस धृष्टता के लिए उपालंभ था।

"चलो, भई! वहीं चलो!" बूढ़े काका लाठी टेककर उठने लगे।

लालचन ने आगे बढ़कर काका को सहारा दिया और आगे-आगे चल पड़ा। उसने एक गीत अलापना शुरू कर दिया था।

लोग कुछ देर असमंजस में खड़े रहे। फिर छितर-छितराकर रेल की लाइन की ओर चल पड़े।

लालचन गाता जा रहा था और मुड़-मुड़कर पीछे देखता जा रहा था।

और जब रांगली अपने भाई और भाभी के साथ लाइन की ओर चली तो लालचन का स्वर और भी ऊंचा हो गया। उसमें अनन्त उत्साह और उल्लास भर आया था।

ज़मीन का खाली प्लॉट

कहते हैं कि पहले यहां भी एक गांव था। उस गांव के यहां से हटने की कहानी बिल्कुल वही कहानी है, जो किसी भी गांव के हटने की होती है। जब तक पास के समृद्ध नगर के धनी निवासियों को उस गांव की भूमि की आवश्यकता नहीं होती, तभी तक वह गांव अपनी जगह पर बना रहता है, किन्तु जब समृद्ध नगर का विकास होता है—वहां की जन-संख्या बढ़ने लगती है, नगर में रहने को मकान नहीं मिलते और नए मकान बनाने को भूमि नहीं रह जाती, तब गांव की आवश्यकता नहीं होती—भूमि की होती है। पता नहीं क्या बात है, तब गांव वाले अपना गांव छोड़कर परे हट जाते हैं। इस हटने के पीछे अनेक अफवाहें हैं; कोई कहता है कि वे पैसे के लालच में भूमि बेच जाते हैं, कोई कहता है कि धमकाकर उन्हें ज़मीन बेचने पर बाध्य किया जाता है, कोई कहता है, उनसे ज़मीन छीन ली जाती है···

यहां जो गांव था, उसके नाम का कोई पता नहीं है। गांव वाले कहां गए, इसका भी कोई पता नहीं है। इसका इतिहास तो अब इस प्रकार आरंभ होता है कि डी० एल० एफ० नामक एक फर्म ने इस स्थान का विकास किया और ज़मीन के प्लॉट बनाकर बेच दिए। प्लॉट बहुत महंगे नहीं बिके थे, यही कोई बारह, चौदह या सोलह रुपए गज़। इतनी सस्ती ज़मीन का कोई महत्त्व नहीं होता। उसे कोई भी खरीद सकता है। तब इस ज़मीन का भी कोई विशेष महत्त्व नहीं था। कई छोटे-मोटे लोगों ने भी प्लॉट खरीद लिए थे और सस्ते समय में मकान बना लिए थे।

यहां 'ए' ब्लॉक का यह तीन सौ बासठ नम्बर का जो प्लॉट है, यह दो भाइयों ने मिलकर खरीद लिया था। रमेशचन्द्र माथुर रेलवे मंत्रालय में क्लर्क था और उसका भाई उमेशचन्द्र माथुर कॉरपोरेशन के एक

अस्पताल में कम्पाउंडर था। दोनों की कोई ऐसी विशेष आय तो नहीं थी, पर तब यह प्लॉट भी कोई विशेष महंगा नहीं था। तीन सौ गज़ का प्लॉट था, कुल अड़तालीस सौ रुपयों का। दोनों भाइयों ने अपनी जमा-पूंजी इकट्ठी कर, कुछ इधर-उधर से प्रबन्ध कर आधे-आधे रुपए डालकर अड़तालीस सौ रुपए दे दिए। सोच लिया, जब कभी और पैसे होंगे, दो-चार कमरे डालकर दोनों भाई अपने रहने भर का ठिकाना कर लेंगे। और पैसे नहीं हुए तो पड़ी रहेगी ज़मीन, ऐसा कौन-सा उन्होंने उसमें खज़ाना लगा दिया था।

पर तभी हवा का रुख बदल गया। कुछ बड़ी-बड़ी कोठियां इधर बन गईं। कुछ ऐम्बेसियों ने अपने उपयोग के लिए मकान ले लिए, कुछ फर्में आ गईं, कुछ बेंक आ गए। बात साफ हो गई कि यह मुहल्ला नहीं बनेगा, कॉलोनी बनेगी, पॉश कॉलोनी और यहां घटिया लोग नहीं रहेंगे। तब अन्य धनी और समृद्ध लोगों को भी लगा कि उनके रहने की यही जगह है—उन्हें भी अब यहीं ज़मीन चाहिए थी, यहीं मकान चाहिए थे। ज़मीन फैल नहीं सकती थी, इसलिए मूल्य ऊपर चढ़ने लगे। मकानों के किराए बढ़ गए और ज़मीन के दाम।

पश्चिमी बंगाल में राजनीतिक अनिश्चितता बढ़ी और कलकत्ता से बड़ी-बड़ी फर्में और धनी-मानी लोग खिसकने लगे। वे सब दिल्ली चले आए और उनमें से कुछ इस कॉलोनी में भी आए। उनके आने का प्रभाव भी मकानों के किराए और ज़मीन के मूल्य पर पड़ा। और भी कुछ बातें हुई ही होंगी—जिससे मूल्य बढ़ने की प्रक्रिया की आवृत्ति होती रही।

रमेशचन्द्र माथुर और उमेशचन्द्र माथुर दोनों भाई मकान के लिए पैसों का प्रबन्ध ही करते रह गए और ज़मीन का मूल्य दो सौ रुपए गज़ हो गया। तब जब उन दोनों ने हिसाब लगाया तो उन्हें पता चला कि जिसे वे लोग चार कमरे डालने के लिए अपनी थोड़ी-सी ज़मीन समझे बैठे थे, उसका मूल्य अब साठ हज़ार रुपए हो चुका था।

दोनों भाइयों की आंखें फटी रह गईं। इतना धन तो उनके पास कभी भी नहीं था और न उन्होंने सोचा था कि कभी होगा ही। दो भाइयों की साठ हज़ार रुपयों की साझी जायदाद हो तो उनमें झगड़ा क्यों न हो।

रमेशचन्द्र माथुर ने कहा कि ज़मीन खरीदते समय उसने अधिक पैसे दिए थे, अड़तालीस सौ में उमेशचन्द्र माथुर ने केवल दो हज़ार रुपए दिए थे। वह अब दो हज़ार देने को तैयार था—ज़मीन उसके नाम हो जानी चाहिए। उमेशचन्द्र माथुर ने कहा कि तब यह बात तय हुई थी कि दोनों भाइयों में से जो मकान बना सकेगा, बना लेगा। वह अब मकान बना सकता है, उसे मकान बनाने दिया जाए।

साझी जायदाद में झगड़ा होना था, हुआ। बात बढ़ गई। मार-पीट तो नहीं हुई, पर दोनों भाइयों में बातचीत बंद हो गई। कचहरी में जाने का साहस दोनों में से किसी को नहीं हुआ। कचहरी तो वे तब ही जा सकते थे, जब ज़मीन बेचकर सारा धन वकीलों के काले कोटों की जेबों में डाल देते। एक-दूसरे से झगड़कर उनका दिमाग काफी खराब हो चुका था, पर इतना खराब नहीं हुआ था कि यह न समझ सकते कि कचहरी पैसा सोखने वाला ब्लॉटिंग पेपर है।

परिणाम यह हुआ कि कोई समझौता नहीं हुआ। दोनों सांप बनकर धन के उस मटके पर बैठ गए। न ज़मीन बिक सकी, न एक ने मकान बनाया, न दूसरे ने और न दोनों ने मिलकर।

आसपास, एक-एक कर सारे मकान बन गए। पर तीन सौ बासठ नंबर का प्लॉट खाली का खाली ही पड़ा रहा। न वहां किसी ने बाड़ लगाई, न नींव खोदी—वह पड़ा रहा, लावारिस का लावारिस! बसन्ती जब अपनी कोठियों की सफाई कर सारा कूड़ा एक टोकरी में जमा कर फेंकने के लिए नाले की ओर जा रही थी तो उसकी आंखें, बहुत दिनों से खाली पड़े इस प्लॉट पर गड़ गईं। सारे 'ए' ब्लॉक में कूड़ा फेंकने की दो जगहें थीं। एक बस स्टैंड के पास बनाया गया कॉर्पोरेशन का कूड़ाघर और दूसरा सारे ब्लॉक के अन्त में बहने वाला गंदा नाला। दोनों ही उसकी इन कोठियों से बहुत दूर पड़ते थे। कूड़ा उठाकर ले जाने और लौटने में वह थक जाती थी और एक चक्कर में आधा घंटा लग जाता था। दो-तीन चक्कर उसे रोज़ लगाने पड़ते थे, कूड़ा ज़्यादा हो तो एक-आध चक्कर अतिरिक्त हो जाता था। और यह प्लॉट खाली पड़ा था—न कोई वाली, न वारिस!

वह खाली प्लॉट के बीचोबीच जाकर रुक गई। चोर दृष्टि से उसने चारों ओर देखा, उसे कोई नहीं देख रहा था। उसने धीरे से कूड़े की टोकरी अपने सर से उतारकर भूमि पर रख दी और बड़ी सतर्कता से चारों दिशाओं में देखते हुए पैर की सहायता से टोकरी उलट दी।

उसने कूड़ा फेंक दिया था और उसे किसी ने नहीं देखा था। उसने टोकरी उठाई और भागती हुई सड़क पर आ गई।

कूड़े की अपनी टोकरी सिर पर उठाए चमेली उधर से गुज़री तो खाली प्लॉट में कूड़ा देखकर ठिठक गई। उसने थोड़ी देर पहले बसन्ती को कूड़ा लेकर जाते देखा था और अब बसन्ती लौटी भी जा रही थी और खाली प्लॉट में कूड़ा भी पड़ा था। चमेली की समझ में सारी बात आ गई—यह छिनाल बसन्ती नाले तक न जाकर कूड़ा खाली प्लॉट में उलट गई थी। तो क्या वही एक पागल थी कि कूड़े की इतनी भारी टोकरी अपने सिर पर उठाए मरती-खपती नाले तक जाएगी! जब बसंती यहां कूड़ा उलट सकती है तो चमेली क्यों नहीं उलट सकती! उसने बड़ी ठसक से टोकरी सिर से उतारी और उलटकर, बसंती द्वारा गिराए गए कूड़े पर सजा दी।

बसंती ने किया था, इसलिए चमेली ने किया, चमेली कर सकती है तो गेंदा क्यों नहीं कर सकती, और तब गुलाबो क्यों नहीं कर सकती!

दो-तीन दिनों में ही तीन सौ बासठ नंबर के खाली प्लॉट में, कॉर्पोरेशन के कूड़ाघर से अधिक कूड़ा जमा हो गया। दिन-प्रति-दिन ढेर ऊंचा उठता गया। कुछ ही दिनों में लोगों के सहयोग ने तीन सौ बासठ नंबर के प्लॉट को, सारे ब्लॉक का सबसे बड़ा, प्रमुख और आकर्षक कूड़ादान बना दिया।

श्रीमती चावला ने जब अपने मकान का पिछला दरवाज़ा खोला तो उनकी आंखें फटी की फटी रह गईं। पिछले दो-तीन दिनों से उन्होंने पिछला दरवाज़ा नहीं खोला था—इतने में ही यह सब कुछ हो गया। खाली प्लॉट उनके पिछले दरवाज़े के ठीक सामने था। बीच में कुल छः फीट चौड़ी, बीमार कुतिया-सी मरियल सड़क थी। लोगों ने उनके दरवाज़े के सामने

कूड़े का ढेर ही लगा दिया। हैं—वे कहां रह रही हैं? उन्होंने तो सोचा था कि वे किसी पॉश लोकेलिटी में रह रही हैं और यहां झुग्गी-झोंपड़ी वाली वस्ती जैसा वातावरण हो रहा है।

श्रीमती कालरा का पिछला दरवाज़ा भी उनके दरवाज़े से एकदम सटा हुआ था। उन्होंने धड़ाधड़ दरवाजा पीट दिया, "बहनजी! ज़रा इधर आना।"

'बहनजी' आईं और इतना बड़ा कूड़ादान देखकर उनकी भी आंखें फटी रह गईं। फिर श्रीमती चावला और श्रीमती कालरा ने मिलकर कॉलोनी के लोगों के विषय में संयुक्त विज्ञप्ति जारी की—"पता नहीं कहां-कहां से जंगली और कमीने लोग यहां बस गए थे। सफाई की ज़रा तमीज़ नहीं और कोठियां बना ली थीं। पता नहीं, भगवान् ने ऐसे लोगों को इतना पैसा क्यों दे दिया था। पता नहीं···

उधर से गेंदा कूड़े की टोकरी लेकर आई। उसने इन्हें खड़े देखा तो कुछ झिझकी। पर इस ज़रा से संकोच के लिए उसे कूड़ा फेंकने के लिए नाले तक जाना स्वीकार नहीं था।

उसने जी कड़ा किया और टोकरी उलट दी। "क्या कर लेंगी मेरा!" अपना साहस बटोरने के लिए वह बड़बड़ाई।

श्रीमती कालरा को एकदम क्रोध आ गया। झपटकर बोलीं, "ऐ जमादारनी! कूड़ा हमारे घर के सामने क्यों फेंक रही हो?"

"बहनजी! मेरा नाम गेंदा है।" गेंदा ने कुछ तेज़ी से कहा।

"अच्छा, गेंदा सही!" श्रीमती कालरा ने उत्तर दिया, "तू कूड़ा नाले में क्यों नहीं फेंकती? हमारे घर के सामने क्यों फेंक रही है? यह कोई कूड़ा फेंकने की जगह है?"

गेंदा ने आवाज़ धीमी नहीं की, "मैं अकेली नहीं फेंकती बहनजी! सारा मुहल्ला यहीं फेंकता है। बाकियों को रोक लो तो मैं भी नहीं फेंकूंगी।"

तब तक वसंती भी अपनी टोकरी लेकर आ गई। समझ गई कि मामला क्या है। यह अवसर झुकने का नहीं था। इस समय दब गई तो रोज़ चार चक्कर नाले तक के पड़ेंगे। कुछ अधिक ही ऐंठकर बोली, "यह किसी

के घर के सामने-वामने नहीं है। खाली पलाट है। यहां कोठी बनवा लो, तब कोई कूड़ा नहीं फेंकेगा।"

और बड़ी ठसक से उसने अपनी टोकरी उलट दी।

दोनों कूड़ा फेंकने का अपना अधिकार स्थापित कर चली गईं।

"देखो तो कितनी ढीठ हैं।" श्रीमती चावला बोलीं।

"इनके तो मुंह ही नहीं लगना चाहिए।" श्रीमती कालरा ने पुनश्च जोड़ा।

श्रीमती चावला इतने में संतुष्ट नहीं हुईं। उन्होंने तैयारी में मुर्गे के समान पंख फड़फड़ाए, गर्दन अकड़ाई और बांग दी, "सारी कॉलोनी में हैज़ा फैलेगा, तब पता चलेगा। सब लोग अपना कूड़ा हमारी कोठी के सामने फिकवाते हैं। कोई अपनी जमादारनी को नहीं रोकता। हमसे जमादारनियां ज़्यादा सगी हो गईं। मैं तो कॉर्पोरेशन में शिकायत करूंगी···"

ऊंची आवाज़ की प्रतिक्रियास्वरूप गली के कई दरवाज़े और खिड़कियां खुलीं और मामला जानकर खटा-खट् बन्द हो गईं। एक श्रीमती बिंद्रा ही अनजाने में बाहर गली में निकल आईं।

"देखो तो बहनजी! लोग अपने घरों का कूड़ा हमारी कोठियों के सामने फिकवाते हैं। यह कोई अच्छी बात तो नहीं है।" श्रीमती कालरा ने श्रीमती बिंद्रा को सुनाया।

श्रीमती बिंद्रा को अपनी गलती का एहसास हुआ। वे वापस घर में लौट गईं। उनका घर खाली प्लॉट से पांच-सात घर छोड़कर था और फिर उनके घर में बसंती काम करती थी। पड़ौसियों के पीछे अपनी जमादारनी से कौन लड़े!

स्कूलों में गर्मी की छुट्टियां हो गई थीं। खाली प्लॉट के बाईं ओर के तीन सौ इकसठ नंबर के मकान की निचली मंज़िल में रहने वाले मुकर्जी साहब बच्चों को लेकर कलकत्ता चले गए थे। पर उनके आंगन में लगी बेल इस बार अंगूरों से लद गई थी। अंगूर कुछ-कुछ पक चले थे। दीवार के साथ-साथ चिपके या आंगन में लटकते गुच्छे काफी दूर से नज़र आते थे।

बब्लू का मन बहुत दिनों से अंगूरों पर आया हुआ था। बेल अंगूरों

से लदी हो, और घर वाले घर पर न हों। इससे अच्छा अवसर और क्या हो सकता है ! पर वह ऊपर तक जाए कैसे ? बांस की सीढ़ी लगा कर तो वह चढ़ नहीं सकता था।

अब खाली प्लॉट में कूड़े का ढेर दीवार के साथ-साथ काफी ऊंचा हो गया था। उसे लग रहा था, यदि राजू उसकी कुछ सहायता करे तो वे दोनों मिलकर काफी अंगूर तोड़ सकते हैं।

वह राजू को बुला लाया।

भरी दोपहरी थी। गर्मी काफी थी। इस समय बाहर कौन निकलेगा ! चारों ओर सुनसान पड़ा था। अच्छी प्रकार सब ओर देख-भालकर उन्होंने दीवार पर चढ़ने की पूरी तैयारी कर डाली। राजू कूड़े के ढेर पर चढ़कर बैठ गया और बबलू उसके कंधों पर चढ़कर खड़ा हो गया। दीवार का सिरा उसके हाथों में था। वह उचका और दीवार से चिपककर ऊपर जा चढ़ा। दोनों ओर पैर लटकाकर वह अच्छी तरह जमकर दीवार पर बैठ गया। चुनकर अच्छे पके गुच्छे की ओर हाथ बढ़ाया। गुच्छा तो टूटा नहीं, बहुत सारे अंगूर भुरभुराकर उसके हाथ में आ गए। नीचे राजू ने अपनी कमीज़ फैला दी और बबलू ने अंगूर उसमें डाल दिए।

बबलू ने दूसरे गुच्छे की ओर हाथ बढ़ाया और तभी उसकी नज़र ऊपरी मंज़िल की ओर उठ गई। ऊपर अपनी बालकनी में खड़े सिंह साहब उसे बड़े ध्यान से देख रहे थे।

बबलू का हाथ कांप गया। वह हकलाया, "अंकल···अंकल···!"

"ले लो। ले लो।" सिंह साहब ने कहा और भीतर चले गए।

बबलू को विश्वास नहीं हुआ कि कोई उसे अंगूर चोरी करते देखकर भी कुछ नहीं कहेगा। वह कई मिनट तक सन्न-सा बैठा रहा। पर जब सिंह साहब भीतर चले गए और काफी देर तक बाहर नहीं आए तो वह निश्चिंत हो गया।

सिंह साहब भीतर जाकर अपने पलंग पर लेट गए। वे सोच रहे थे, मुकर्जी साहब के अंगूर चोरी किए जा रहे थे और वे देखकर चुप रहे। क्या यह ठीक था ?···नहीं तो और क्या करते ? जब मुकर्जी साहब यहां नहीं हैं, तो अंगूर तो चोरी होंगे ही। उनकी रखवाली का काम सिंह साहब

का नहीं था। अंगूरों की ऐसी-तैसी···पर ऐसे तो कोई भी कूड़े के ढेर से उचककर दीवार पर चढ़ सकता था। दीवार से फिसलकर आंगन में कूद सकता था। आंगन में से पिछली सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आ सकता था। बाल्कनी का जंगला कूदकर भीतर आ सकता था। गर्मियों का मौसम था। वे दरवाज़े खोलकर सोते थे। ऐसे तो किसी भी दिन चोरी हो सकती थी। नहीं···यह कूड़े का ढेर बहुत खतरनाक चीज़ थी। इसे यहां से हटवाना ही पड़ेगा···

डॉ० गर्ग का घर एकदम किनारे पर था। उसके आगे बहुत कम चौड़ी सड़क और उसके परे नाला था। अपने बेटे के मुंडन के अवसर पर वे एक छोटी-सी पार्टी देना चाहते थे। पर शामियाना कहां लगवाएं! 'ए' ब्लॉक का पार्क उनके घर से काफी दूर था। फिर वे नगर निगम के दफ्तर में उद्यान-विभाग से पूछताछ कर आए थे। वह काफी महंगा सौदा था और काफी परेशानी भी थी। सौ-डेढ़ सौ रुपया सिक्योरिटी थी, चालीस रुपए किराया। दस रुपए क्लर्क के। फिर दो-तीन चक्कर अनुमति लेने के, दो-तीन चक्कर सिक्योरिटी वापस लेने के।

क्या इससे अच्छा यह नहीं कि वे सड़क पर ही शामियाना लगा लें। पर, सड़क पर जगह नहीं थी···और उनकी नज़र बार-बार तीन सौ बासठ नंबर के खाली प्लॉट पर पड़ रही थी। यहीं काम बन सकता था। पर यह किसी और का प्लॉट था। उसके मालिक को ढूंढ़कर उससे पूछना होगा। पता नहीं वह कहां होगा। फिर यह प्लॉट बहुत गंदा था। इसे साफ करवाए बिना शामियाना नहीं लग सकता था।

बहुत सोचकर उन्होंने पाया कि उनके सामने सबसे सरल मार्ग यह था कि वे इस प्लॉट के आधे हिस्से को साफ करवा लें। आधा हिस्सा उनके लिए काफी होगा। वे दो-चार मज़दूर लगवा दें तो वे लोग आधा हिस्सा साफ कर देंगे। कुदालों से कूड़ा उठाकर पिछले आधे भाग में फेंक देंगे तो ट्रक इत्यादि की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। रही अनुमति की बात, तो उसकी विशेष आवश्यकता नहीं थी। उसके मालिक को क्या पता चलेगा! और वे गंदे प्लॉट को साफ ही तो करवा रहे हैं, कौन-सा उसे उठाए लिए

जा रहे हैं !

शर्मा साहब शाम को काफी देर से दफ्तर से लौटे थे। खाली प्लॉट के पास से गुज़रते हुए कुछ चौंके। पर कार उन्होंने अपने घर के सामने ले जाकर ही खड़ी की। कार खड़ी कर वे पैदल वापस लौटे। आकर उन्होंने देखा, आधा प्लॉट साफ था। कल एक शामियाना लगा था। शायद किसी ने कोई फंक्शन किया था। वे काफी देर खड़े सोचते रहे। उनका घर प्लॉट से तीन मकान हटकर था। बहुत दूर नहीं था। उन्हें घर के सामने, सड़क पर कार खड़ी करने में परेशानी होती थी। यह जगह अच्छी थी। यहां वे कार खड़ी कर सकते थे—उससे रास्ता नहीं रुकेगा। जिसने प्लॉट साफ कराया था, उसने सड़क के साथ बनी कच्ची नाली भी पूरी तरह भरवा दी थी। कार बड़ी सुविधा से यहां आ सकती थी। यदि नाली न भरवाई गई होती तो प्लॉट उनके किसी काम नहीं आ सकता था।

पर जिसका प्लॉट है, हो सकता है, उसे आपत्ति हो। हो सकता है, उसे उसकी जरूरत हो। या जिसने साफ करवाया है, हो सकता है, उसने अपने काम के लिए साफ करवाया हो···पर यदि कार सड़क पर पार्क की जा सकती है तो खाली प्लॉट में क्यों नहीं की जा सकती। वे वहीं कार पार्क करें। जब कभी कोई आपत्ति करेगा तब देखा जाएगा।

वे सधे हुए कदमों से चलकर अपनी कार तक आए। कार बैक की और लाकर खाली प्लॉट के साफ हिस्से में खड़ी कर दी। खिड़कियों के शीशे चढ़ाए। दरवाज़ा लॉक किया और बड़े तृप्त भाव से चलते हुए अपने घर की ओर लौट गए।

बबलू और राजू अपने रैकेट लेकर लौटे तो देखकर हैरान रह गए कि जहां वे बैडमिंटन खेलने की योजना बनाकर गए थे, वहां किसी ने अपनी कार खड़ी कर दी है। बबलू ने बड़ी मुश्किल से, ज़िद कर-करके, रो-रो के पापा से यह रैकेट लिया था। पापा खरीदकर ही नहीं देते थे कि वह रैकेट लेगा तो सड़क पर खेला करेगा और यहां मुहल्ले के भीतर की छोटी-छोटी सड़कों पर इतनी कारें, मोटरसाइकिल और स्कूटर दौड़ा करते हैं

कि बच्चों के लिए सड़क पर खेलना बहुत ही जोखिम का काम है। सड़क पर गाड़ियों की इतनी भीड़ हो कैसे नहीं—एक-एक मकान में दो-दो, तीन-तीन सवारियां हैं।

उसने रैकेट कब से ले रखा था और उसे सम्भाले हुए था कि खेलने की कोई जगह मिलेगी तो खेलेगा।

"हमने तो गर्ग अंकल को पहले ही कह दिया था कि हम यहां पर खेला करेंगे।" बबलू ने कहा।

"पर यह कार तो गर्ग अंकल की नहीं है।" राजू ने उत्तर दिया, "गर्ग अंकल के पास कार है ही नहीं।"

"कार किसकी है?" बबलू ने जिज्ञासा की।

"मेरा विचार है कि यह शर्मा अंकल की है।" राजू बोला।

"शर्मा अंकल! वही बड़ी-बड़ी मूंछों वाले?"

"हां।"

"उनसे कौन कुछ कहे। खाने को पड़ते हैं।"

"मेरा तो मन कर रहा है कि पत्थर मारकर इनकी कार के शीशे तोड़ दूं।"

"अरे छोड़ो! ऐसे ही कम झगड़ालू नहीं हैं।"

श्रीमती चावला और श्रीमती कालरा अपने-अपने दरवाज़े पर खड़ी बातें कर रही थीं।

"कमीने हैं और क्या।"

"सबको अपनी-अपनी ही सूझती है। दूसरे का तो विचार ही नहीं आता। स्वार्थी कहीं के!"

"देखो तो! साफ करवाने ही लगे थे तो सारा प्लॉट साफ करवा देते तो क्या उनकी कोठी बिक जाती!"

"चलो न करवाते सारा प्लॉट साफ। पर जितना भाग साफ किया था, उसका कूड़ा तो कहीं और फिकवा देते। उसे भी उठाकर हमारे दरवाज़े पर पटक दिया।"

"और क्या! कूड़ा तो यहां पहले भी था। पर इतना ऊंचा ढेर तो

नहीं था। इन्होंने तो पहाड़ ही बनाकर रख दिया। इधर से जो हवा हमारे घरों में आएगी, वह बदबू लेकर ही आएगी।"

"पता नहीं लोग इतने कमीने कैसे हो जाते हैं।"

"यही बात मेरी भी समझ में नहीं आती बहनजी !"

रमेशचन्द्र माथुर आंखें फाड़े अपने प्लॉट की ओर देख रहे थे। पिछले सप्ताह जब वे इधर से गुज़रे थे तो उन्होंने इतना कूड़ा पड़ा देखा था कि उन्हें किसी प्रकार की कोई आशंका ही नहीं रही थी। पर आज आधा प्लॉट किस सफाई से साफ और समतल किया हुआ था—आधा प्लॉट ! तो उमेशचन्द्र माथुर शरारत कर रहा है। वह अपने हिस्से का आधा प्लॉट साफ करवाकर दो-चार कमरे डाल लेना चाहता है। कमरे न भी डाले तो भी शायद वह इतने क्षेत्र को घेरकर अपना कब्ज़ा करना चाहता है। वे यह कभी नहीं होने देंगे। देखो तो भाई के साथ ही यह धोखा-धड़ी !

वे काफी देर तक अपने प्लॉट के उस साफ किए गए हिस्से पर टहलते रहे, इधर से उधर ! यदि सचमुच ही उमेश ने ऐसा कुछ किया, तो वे कर ही क्या सकते हैं ? क्या वे इस साफ किए गए भाग पर फिर से कूड़ा डलवा दें ? या शेष भाग को भी साफ कर पूरे या आधे प्लॉट को घेर लें ?

सहसा उन्होंने टहलना बंद किया और साथ वाले मकान के अहाते का गेट खोलकर भीतर चले गए। नीचे ताला लगा हुआ था। उन्होंने ऊपर वाली मंज़िल की कॉलबेल दबा दी।

सिंह साहब ने झांककर देखा, "कहिए !"

"माफ कीजिएगा। आपको तकलीफ दी।" रमेशचन्द्र माथुर बोले, "मैं ज़रा यह पूछना चाहता था कि यह आपके साथ वाला प्लॉट किसने साफ करवाया है ?"

"जी, मेरा विचार है कि यह डॉ० गर्ग ने करवाया था।"

"आप पक्की बात कह रहे हैं न ! उमेशचन्द्र माथुर ने तो साफ नहीं करवाया ?"

"जी, मेरा तो यही विचार है, क्योंकि डॉ० गर्ग ने अपने बेटे के मुंडन के लिए यहां शामियाना लगाया था।"

रमेशचन्द्र माथुर के मन से अपने भाई के षड्यंत्र की आशंका तुरंत धुल गई, पर दूसरी अनेक आशंकाओं ने उन्हें घेर लिया।

"बस केवल मुंडन के लिए ही प्लॉट साफ कराया था या कोई और कारण भी था?"

"मैं तो यही समझता हूं कि मुंडनों के लिए ही करवाया था।"

"कहीं वे अपना गैरेज-वैरेज तो नहीं बनवाना चाहते? उन्होंने अपनी कार खड़ी कर रखी है।" रमेशचन्द्र माथुर बोले।

सिंह साहब ने झांककर देखा, "अरे नहीं साहब! यह कार तो शर्मा साहब की है।"

"अच्छा साहब! तकलीफ के लिए माफ कीजिएगा।"

"अजी नहीं! कोई बात नहीं। तकलीफ कैसी!"

जुलाई का आरंभ था और दिन-भर बड़ा गर्म और गुमसुम गुज़रा था। शाम होते-होते बादलों के हज़ारों-लाखों गुच्छे आकाश पर टिड्डी दल के समान छा गए। समय से काफी पहले ही अंधेरा-सा हो गया और फिर बड़ी-बड़ी बूंदों के साथ वर्षा आरंभ हो गई, जैसे कोई झटपट आक्रमण करता हो। थोड़ी देर में वर्षा तेज़ बरस कर जैसे हांफ गई और एकसार होकर बरसने लगी। ढाई-तीन घंटों तक लगातार वर्षा होती रही और फिर धीरे-धीरे थम गई।

सिंह साहब अपनी अगली बाल्कनी पर खड़े बड़ी चिंतित आंखों से सड़क को देख रहे थे। उनके घर के सामने सड़क पर काफी पानी जमा हो गया था और उसके बह जाने के कोई आसार नहीं थे। गेट से बाहर निकलना तक सम्भव नहीं था।

यह जगह गली में सबसे नीची जगह थी। यहां बहुधा पानी रुक जाया करता था। वैसे तो सारी गली में ही थोड़ा-थोड़ा पानी जमा हो जाता था, पर वह धीरे-धीरे बह भी जाता था। बाकी सारी सड़क से पानी बह गया था, पर उनके गेट के सामने अभी भी काफी मात्रा में पानी

जमा था। यह पानी ऐसे ही रहेगा। जब तक कि सूर्य की गर्मी से ही वह वाष्प बनकर न उड़ जाए। पानी सूखने की इस प्रक्रिया में कल सारा दिन लग जाएगा।

वे उतरकर नीचे आए। आखिर देखें तो सही कि पानी जमा क्यों हो गया है!

नीचे उतरते ही बात उनकी समझ में आ गई। उनके साथ वाले खाली प्लॉट को साफ करवाते हुए डा० गर्ग ने उसके सामने की वह कच्ची नाली भी बन्द करवा दी थी, जो कॉर्पोरेशन वालों ने खोदी थी। उन्होंने प्लॉट को सड़क से एकदम मिला दिया था और पानी बह जाने का कोई भी मार्ग नहीं छोड़ा था। और यही जगह सबसे नीची भी थी। बस, अच्छी-खासी तलैया बन गई थी।

सिंह साहब फुंकते हुए ऊपर आए।

इस देश के लोगों में सिविक सेंस की इतनी कमी है कि क्या कहें। अपना काम चला लेंगे, दूसरे को चाहे कितनी हानि हो। अभी तो जुलाई का आरंभ है। आगे वर्षा ही वर्षा है। एक बार मानसून आरंभ हो गया तो फिर यहां ताल-तलैया ही बने रहेंगे। उनके लिए घर से बाहर निकलना भी असंभव हो जाएगा। आखिर वे तैरकर बाहर जाने से तो रहे!

उनके जी में आया कि वे उसी समय नौकर को कहें कि वह कुदाल लेकर नाली खोद दे, ताकि यह पानी यहां से निकल सके।···पर नाली खुदवाने से पहले उन्हें सारी बात सोच-समझ लेनी चाहिए। डॉ० गर्ग ने नाली भरवाई थी। उनकी सिंह साहब को कोई चिन्ता नहीं थी। एक तो उनका काम भी समाप्त हो गया था—अब उन्हें क्या। नाली बंद रहे या खोल दी जाए। फिर वे लड़ने-भिड़ने वाले आदमी भी नहीं थे।

पर यह सबको पता था कि अब वहां शर्मा अपनी कार खड़ी करता था। यह मान लिया गया था कि यह जगह शर्मा की कार के लिए है। एक प्रकार से उसी का कब्ज़ा था। बच्चे भी तभी तक खेलते थे, जब तक कार वहां नहीं होती थी।

और शर्मा बड़ा झगड़ालू और करख्त व्यक्ति था। यदि सिंह साहब ने नाली खुदवा दी तो वह अपनी कार वहां खड़ी नहीं कर पाएगा। तब

झगड़ा निश्चित है।

सिंह साहब को लगा, उन्होंने शर्मा की बात सोचकर नाली खुदवाने का इरादा छोड़ दिया है। अब नाली कोई नहीं खुदवाएगा। सारी बरसात में उनके घर के सामने सड़क पर पानी इसी प्रकार जमा रहेगा और वे कुढ़ते रहेंगे—गर्ग और शर्मा को गालियां देते रहेंगे।

गुप्ताजी की बेटी कांता का विवाह था।

गुप्ताजी अपने तीनों बेटों के साथ बैठे विवाह के प्रबंध को लेकर सोच-विचार कर रहे थे।

"मेरा तो विचार है कि सड़क पर शामियाना लगाना ठीक नहीं है।" बड़े बेटे सुरेन्द्र ने कहा, "एक तो उससे आने-जाने का रास्ता रुक जाएगा और फिर सड़क पर अधिक जगह भी नहीं है।"

"तो फिर कहां लगे शामियाना?" गुप्ताजी ने पूछा।

"वह एक खाली प्लॉट है तो तीन सौ बासठ नम्बर वाला।" महेन्द्र बोला।

"वह कितना गन्दा पड़ा है, देखा भी है तुमने।" छोटे लड़के राजेन्द्र ने कहा।

"गंदा है तो क्या। साफ कराओ।" सुरेन्द्र ने उत्तर दिया।

"आह-हा-हा! बड़ा आसान काम है न! बड़े नर्म होकर कह दिया, साफ कराओ।" राजेन्द्र फिर बोला।

"क्यों, डॉ० गर्ग ने अपने बेटे के मुंडन पर करवाया नहीं था?"

"तो फिर उस आधे साफ हिस्से पर ही शामियाना लगवा लो।" राजेन्द्र बोला।

"वह काफी नहीं है। हमें सारा प्लॉट साफ करवाना होगा।"

राजेन्द्र फिर नाराज़ हो गया, "क्योंकि शामियाने का खर्च मेरे ज़िम्मे पड़ा है, इसलिए? डॉ० गर्ग ने तो चार मज़दूर लगवाए और अगले भाग का कूड़ा पिछले भाग में फिकवा दिया। मुझे सारा प्लॉट साफ करवाना है तो कम-से-कम छः मज़दूर लगवाऊंगा। फिर कूड़ा वहां से उठवाकर कूड़ा-घर में फिकवाने के लिए ट्रक मंगवाऊंगा। पता है, कितना खर्च होगा?"

"ऐसा करो।" महेन्द्र बोला, "हम रेसिडेंट्स एसोसिएशन को कहते हैं कि वह इसे साफ करवाए।"

"तुम कौन होते हो एसोसिएशन को कहने वाले? छत्तीस बार पिताजी से कहा, पर मेंबर तक तो वे बने नहीं।" सुरेन्द्र बोला।

"तुम रहने दो बेटाजी!" बड़ी देर के बाद गुप्ताजी बोले थे, "तुम्हारा कहा मानूं तो हो चुका गुज़ारा। फिर तो यह मकान भी बन चुकता। पांच सालों से यहां हूं। एसोसिएशन का मेंबर बना होता तो अब तक उन्हें तीन रुपए महीने के हिसाब से बारह तिया छत्तीस पंजे एक सौ अस्सी रुपये दे चुका होता और आगे भी ज़िन्दगी भर देता रहता। इतने में हम खुद प्लॉट साफ नहीं करवा सकते?"

"तो फिर जैसे भी हो, करवाओ।"

बात यहीं समाप्त हो गई। शामियाना उसी खाली प्लॉट में लगना था और वह राजेन्द्र को साफ करवाना ही था।

राजेन्द्र ने खूब हिसाब लगा लिया था। प्लॉट साफ करवाने के चालीस-पचास रुपए अवश्य खर्च हो जाएंगे। यानी उसके भाइयों और बाप ने चालीस-पचास रुपयों का अतिरिक्त खर्च उसके ज़िम्मे डाल दिया था। खुद तो साले इतने कंजूस हैं कि एसोसिएशन के मेंबर तक नहीं बनेंगे और उसके हिस्से का खर्च बढ़ाते जाएंगे। वह भी इतना कच्चा नहीं है।

वह पहले तो घर में बैठा सोचता रहा, फिर उठकर वह खाली प्लॉट देखने चला गया। काफी देर तक खड़े रहने के बाद वह घर लौटा और उसने एक प्रार्थनापत्र लिखा :

स्वास्थ्य अधिकारी,
दिल्ली नगर निगम
दिल्ली।

प्रिय महोदय,

हमारे मुहल्ले में 'ए' ब्लॉक का तीन सौ बासठ नंबर का प्लॉट खाली पड़ा है और मुहल्ले के जमादारों ने उसे कूड़ाघर बना रखा है। यह जगह लोगों के स्वास्थ्य के लिए भयानक खतरा है। यहां

असंख्य मक्खियां, मच्छर तथा अन्य प्रकार के कीटाणु पैदा हो चुके हैं तथा दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। प्रार्थना है कि आसपास के लोगों के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए इसे साफ करवाने का प्रबंध कर दें।

धन्यवाद भवदीय

......

भवदीय के नीचे उसने अपने हस्ताक्षर किए और चावला साहब का दरवाज़ा जा खटखटाया।

"आइए-आइए गुप्ताजी। कहिए, कैसे आना हुआ?"

"क्या बताएं चावला साहब!" राजेन्द्र बोला, "अपने मुहल्ले की यह रेसिडेंट्स एसोसिएशन इतनी निकम्मी हो गई है कि क्या कहूं। अब देखिए, यह जो खाली प्लॉट है। कमबख्तों ने उसे मक्खियों, मच्छरों, सांपों का घर बना रखा है। इससे कहीं हैज़ा ही न फैल जाए।"

"मैं स्वयं बहुत परेशान हूं।" चावला साहब बोले, "एसोसिएशन तो सचमुच एकदम निकम्मी है।"

"मुझसे देखा नहीं जाता।" राजेन्द्र बोला, "मैंने नगर निगम के स्वास्थ्य अधिकारी के नाम यह पत्र लिखा है। साहब, मैं तो लड़ूंगा। आइल फाइट इट आउट। ज़रूरत पड़ी तो पी० एम० तक जाऊंगा।"

चावला साहब ने प्रार्थना-पत्र पढ़ा और अपने हस्ताक्षर कर दिए।

"काम तो अच्छा है।" वे बोले, "पर गुप्ताजी, आपका घर तो कोई ऐसा पास भी नहीं। आप क्यों इतना कष्ट उठा रहे हैं?"

"चावला साहब! मुझसे गंदगी बर्दाश्त नहीं होती। अपना नहीं तो क्या, चार पड़ोसियों का तो भला हो ही जाएगा।"

कालरा साहब राजेन्द्र को घर पर नहीं मिले, पर श्रीमती कालरा ने हस्ताक्षर कर दिए। वे इस खाली प्लॉट, उस पर जमा कूड़े और कूड़ा जमा करने वाले लोगों—सबसे ही नाराज़ थीं। उन्होंने राजेन्द्र को जन-कल्याण के इस काम के लिए बहुत शाबाशी भी दी।

राजेन्द्र का सिंह साहब ने सबसे अधिक स्वागत किया। उसे बैठाया

और नौकर से चाय लाने को कहा।

"आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं।" उन्होंने कहा, "मेरा तो विचार है कि सारी कॉलोनी में जहां भी गंदगी है, उसे साफ करवाया जाए।"

"जी हां। मेरे भी दिमाग में यह बात है।" राजेन्द्र बोला, "बाद में हम यह काम भी करेंगे।"

"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।" सिंह साहब प्रसन्न हुए, "एक बात और भी है, शायद आपने ध्यान दिया हो।"

"जी क्या ?"

"यही कि सफाई के लिए यह भी ज़रूरी है कि वर्षा का पानी सड़क पर खड़ा न रहे और नालियों में बह जाए।"

"जी हां। यह तो बहुत ज़रूरी है।"

"देखिए, उसके लिए ज़रूरी यह है कि सड़क कुछ ऊंचाई पर हो। सड़क के दोनों ओर ढलान हो और साफ-सुथरी खुदी हुई नालियां हों।" सिंह साहब ने विस्तार से समझाना शुरू किया, "पर मैंने देखा है कि हर आदमी ने सड़क और नाली के बीच की अपने घर के सामने की ज़मीन ऊंची कर उसे सब्ज़ी या फूलों की क्यारी बना लिया है। और जगह-जगह से नालियां बंद भी कर दी हैं···।"

"जी हां, जी हां।"

सिंह साहब हस्ताक्षर कर चुके थे। राजेन्द्र चाय पी चुका था। अब उसे ज़रा जल्दी थी।

"उन नालियों के खुदवाने का भी कोई प्रबंध होना चाहिए।"

"ज़रूर साहब, ज़रूर। पर नालियों का विभाग दूसरा है। उसके लिए कोई दूसरा व्यक्ति कोशिश करे तो ज़्यादा अच्छा है। एक ही आदमी हर काम में टांग अड़ाए, यह अच्छा नहीं लगता। अच्छा जी ! थैंक्यू !"

राजेन्द्र चला गया।

'उल्लू का पट्ठा ! नालियां भी इसके लिए हम खुदवाएं।'—राजेन्द्र सोचता जा रहा था।

श्रीमती चावला और श्रीमती कालरा दोनों ही बहुत प्रसन्न थीं।

"बहनजी! मैं तो कहती हूं कि गुप्ताजी ने दलिद्दर काट दिया। कितनी गंदी होती थी यह जगह! तौबा-तौबा!"

"मुहल्ले वालों ने तो अपनी ओर से कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी। वह तो भगवान् ने ही हमारी सुन ली।"

"और क्या। इतनी मक्खियां। तौबा! ठीक कहते थे गुप्ताजी। हैज़ा हो सकता था।"

"हां-हां, हो क्यों नहीं सकता था। मुहल्ले वालों की बला से। हम मरें या जिएं।"

"और क्या। किसी मुए को हमारे बच्चों पर भी दया नहीं आती थी। उठाया अपने घर का कूड़ा और हमारे घर के सामने डाल दिया।"

"हां जी, और क्या!"

कांता के विवाह में श्रीमती चावला और श्रीमती कालरा ही सबसे अधिक व्यस्त रहीं। दोनों ने कांता को इक्कीस-इक्कीस रुपये नकद का शगन डाला।

इस बार उमेशचंद्र माथुर ने भी चक्कर लगाया। रमेशचंद्र माथुर ने तो लगाया ही। दोनों ने अलग-अलग पूछताछ की। किसने प्लॉट को साफ करवाया? क्यों करवाया? विवाह ही करना था? कोई और बात तो नहीं थी? पूरी जांच-पड़ताल के पश्चात् दोनों निश्चित हो गए कि और कोई बात नहीं है। कोई उनके प्लॉट पर अधिकार नहीं जमा रहा। पर यह बात दोनों भाइयों में से एक को भी पसंद नहीं आई थी कि प्लॉट साफ कर दिया गया है। अब उसका सार्वजनिक उपयोग कम हो जाएगा और विरोधी के लिए उसका कब्ज़ा लेना सरल हो जाएगा।

बबलू और राजू बहुत प्रसन्न थे और उनके साथ कुछ अन्य लड़के भी। अब शर्मा अंकल की कार सारी जगह नहीं घेर सकती थी। उनके खेलने के लिए जगह बन ही जाएगी। बबलू का बैडमिंटन रैकेट अब अपने फ्रेम में टंगा ही नहीं रहेगा…

मुहल्ले के कुछ अन्य कार वालों की नज़रें भी इस प्लॉट पर थीं। अब

वे यहां शर्मा साहब की कार के साथ अपनी कार खड़ी कर सकेंगे। अब न उनके घर के आगे की सड़क रुकेगी और न ही उन्हें अपने मकान का सारा बरामदा गैरेज के रूप में घिरा हुआ रखना होगा।

गुप्ताजी काफी परेशान थे।

उनके बेटे ने काम तो बड़ी समझदारी से किया था। बिना खर्च किए शामियाने के लिए जगह भी साफ करा ली और लोगों के सिर पर अहसान भी चढ़ा दिया। पर एक बात ठीक नहीं थी। अब दूसरे लोग भी उस प्लॉट का उपयोग अपने कामों के लिए करेंगे। अब मुहल्ले में किसी की बेटी का विवाह होगा तो आराम से यहां शामियाना लगा लेगा। उसे न वह परेशानी होगी, जो उन्हें हुई थी और न उसका कोई पैसा ही खर्च होगा। यह बात उन्हें पसंद नहीं थी। हाय ! लोग उनके परिश्रम का फल लूटकर खा जाएंगे…

बसंती ने रास्ते में जाती हुई चमेली को रोक लिया, "क्यों बहना ! क्या सोचा है ?"

"कौन-सी बात ?"

"अरे यही पलाट की बात !" बसंती बोली, "पलाट तो साफ हो गया। अब हमें वहां कोई कूड़ा नहीं फेंकने देगा।"

"तो ?"

"तो क्या हम उतनी दूर नाले में कूड़ा फेंकने जाएं ?"

"और क्या ?"

"चार गुनी मेहनत हो जाएगी।"

"दूसरा रास्ता ही क्या है ?"

"क्यों, रास्ता क्यों नहीं।" बसंती बोली, "हम उतने ही पैसों में चौगुनी मेहनत क्यों करें। या तो कोठियों वाले पास ही कूड़ादान बनवा दें या हमारे पैसे बढ़ा दें।"

"ठीक कहती हो।"

"तो सबसे सलाह कर लें ?"

"हां।"

बसंती और चमेली ने गेंदा, गुलाबो, शांति और पुष्पा को भी रोक लिया। बसंती ने सबसे अपनी बात कही।

"कहती तो ठीक हो, पर कोई पैसे बढ़ाएगा भी ?"

"क्यों नहीं बढ़ाएंगे ?"

"हमारी मेहनत नहीं बढ़ी ?"

"अगर नहीं बढ़ाएंगे तो हम क्या कर लेंगी ?" गेंदा बोली।

"कल से काम बंद !" शांति बोली।

"बंद ?"

"हां। बंद।"

"सबकी राय है ?"

"सबकी।"

"फिर कोई पीछे तो नहीं हटेगी ?"

"नहीं।"

"जो पीछे हटे, उसे उसके घरवाले और बच्चों की सौगंध !"

पैसे बढ़ाने के प्रस्ताव को श्रीमती चावला और श्रीमती कालरा तुरंत मान गईं। सिंह साहब की पत्नी भी मान गई। पर श्रीमती बिंद्रा नहीं मानीं।

"क्यों बढ़ाएं पैसे ?"

"बहनजी, कूड़ा लेकर बहुत दूर जाना पड़ेगा।"

"मेरी बला से !" श्रीमती बिंद्रा बोलीं, "तुम पास फेंको या दूर।"

"पर मेरे पास फेंकने के लिए अब कोई जगह नहीं है।"

"क्यों ? वह खाली प्लॉट तो है।"

"बहनजी ! वह साफ कर दिया गया है।"

"तो यह किसने कहा कि वह फिर गंदा नहीं किया जा सकता ?" श्रीमती बिंद्रा ने अपना निर्णय सुना दिया, "सुन बसंती ! मैं एक पैसा भी नहीं बढ़ाऊंगी।"

गुप्ताजी की पत्नी भी अड़ गई, वह पैसे नहीं बढ़ाएगी। गुप्ताजी को भी

बुला लिया गया।

"सुन जमादारनी !" गुप्ताजी बोले, "वह प्लॉट मैंने साफ कराया था। अब मैं कहता हूं कि तुम वहां कूड़ा फेंको। पैसे हम नहीं बढ़ाएंगे।"

उस दिन कोई फैसला नहीं हो सका, पर बसंती, चमेली, गेंदा, गुलाबो, शांति या पुष्पा में से किसी का भी साहस नहीं हुआ कि खाली प्लॉट में कूड़ा फेंकें। वे खीझती और झींकती हुई कूड़ा नाले में ही फेंककर आईं। कमेटी वालों ने प्लॉट साफ किया था और कोठी वाले सफाई पसंद करते थे। वे उसे गंदा करने का साहस करें या न करें ?

जाते समय उन्होंने तय किया कि कल काम शुरू करने से पहले वे मिल लें और क्या करना है इसका फैसला कर लें।

दूसरे दिन सवेरे वे उसी प्लॉट पर मिलीं और देखकर हैरान थीं कि उनके आने से पहले ही वहां कोई कुछ कूड़ा फेंक गया था।

"तब ?"

"पैसे तो कोई बढ़ाता नहीं।"

"फिर ?"

"फिर क्या ! कूड़ा लाकर यहीं डालो।" बसंती बोली।

"कोई मना करे तो ?"

"उसकी ऐसी-तैसी।"

थोड़ी देर में एक-एक घर से आकर वहां कूड़े का ढेर लगने लगा…

श्रीमती चावला और श्रीमती कालरा चिल्लाईं। जमादारनी मुंह बिचकाकर चली गई। सिंह साहब ने माथा ठोक लिया। किसी ने उनकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। बबलू और राजू खेल का मैदान खराब होते देख निराश हुए और उनकी दृष्टि तीन सौ इकसठ वालों की अंगूर की बेल पर चली गई। उमेशचंद्र माथुर और रमेशचंद्र माथुर प्रसन्न थे : उनके प्लॉट पर कोई कब्ज़ा नहीं कर सकेगा। गुप्ताजी बहुत प्रसन्न थे : उनके परिश्रम का फल और कोई नहीं खा सकेगा। शर्मा साहब तथा एक-दो और कारों वाले बाद में खीझेंगे,अभी उनकी कारों के लिए पार्क करने की काफी जगह है।

एक ही विकल्प ?

इन सीढ़ियों पर अकसर क्रोध आता है मुझे। इतनी ऊबड़-खाबड़ सीढ़ियां तो शायद किसी मकबरे की भी नहीं होंगी। सत्य तो यह है कि अनेक मकबरे हमारे इस घर से अच्छी अवस्था में हैं। क्यों न हों—वहां मृत मनुष्य बसते हैं और यहां जीवित लाशें। वे मर चुके हैं, पर दुनिया उन्हें जानती है। उन्हें देखने आते हैं लोग। हमें देखने के लिए तो नगरपालिका के कर्मचारी भी नहीं आते।

सीढ़ियां उतरीं तो देखा, बड़ी भाभी छोटे मुन्ने को गोद में लिये चली आ रही है। सीढ़ियों का ऊबड़-खाबड़पन विस्मृत हो गया। मुन्ने को गोद में लेने के लिए मन ललक गया। मां ने सवेरे ही कहा था कि उन्हें कालूशाह के स्यापे में जाना है। भाभी भीउ सके लिए आयी थी। कालूशाह बड़ा जाना-माना व्यक्ति था हमारी बिरादरी का। सभी प्रकार से जाना-माना। तीन पत्नियां थीं उसकी—तीनों जीवित। ये तो स्थायी रूप से थीं, अस्थायी भी रही होंगी – ऐसा मैंने सुना था। सोचती हूं कैसे सम्भव हो सका यह सब, जबकि बिरादरी के बन्धन इतने सशक्त थे उस समय। बात मेरे होश के पहले की है। सुना है, बिरादरी की समस्त आपत्तियों को कालूशाह की एक दहाड़ ने समाप्त कर दिया था। उसका कहना था कि वह रखेगा तीन पत्नियां, किसी को क्या आपत्ति है। वह तीन का भरण-पोषण कर सकता है, तीन रखेगा। भगवान् ने यदि धन दिया और वह और अधिक बोझ उठा सका तो वह दो-एक स्त्रियां और रखेगा। यदि और कोई भी रख सकता हो तो रख ले।

सत्य यही है, और कोई दो पत्नियों का भी बोझ नहीं उठा सका, इसलिए किसी ने दो भी नहीं रखीं।

आदमी जानदार था। बिरादरी से वह नहीं घबराया, बिरादरी उससे

घबराई। औरतें घर में तीन थीं, पर मजाल है कभी लड़ाई हुई हो। थर-थर कांपती थीं कालूशाह से। दबंग इतना था कि मुहल्ले में कोई चूं न कर सकता था। कहते हैं, एक बार उसकी छोटी पत्नी नहाकर छत पर बाल सुखा रही थी। संयोगवश उसका पड़ोसी भी उसी समय अपनी छत पर आ गया। कालूशाह से यह देखा न गया। वह झट अपनी दुनाली बन्दूक निकाल लाया—'उतर नीचे नहीं तो भून दूंगा!' पड़ोसी न केवल छत से नीचे उतर आया, वरन् उसी दिन उसने मिस्त्री को बुलाकर छत पर जाने वाली सीढ़ियों का अपना द्वार बन्द करवा दिया।

ऐसा था कालूशाह। पर ये सब पुरानी बातें हैं, हमारे होश से पहले की। ये उन दिनों की बातें हैं जब विभाजन से पहले सब लोग अपने-अपने घरों में थे। धरती पर जमे हुए थे—उस धरती पर, जहां न जाने कितनी शताब्दियों से उनके पूर्वज रहते आये थे। धरती पर पैर जमे हों तो मनुष्य के शरीर में जान होती है और वाणी में बल।

जब मैंने कालूशाह को देखा था तब वह भी हमारे समान ही लुटा-पुटा आया था, अपनी धरती छोड़कर। बूढ़ा-सा लगता था, निर्बल और अशक्त। किन्तु उसके पास पैसे थे, जिनसे उसके बेटे आज अमीर हो गए थे। हमारे जैसी अवस्था नहीं थी उनकी—हमसे बहुत अच्छी अवस्था में थे वे—खाते-पीते। यह और बात है कि उसके बेटों का न वह रोब-दाब था, न उनके पास दुनाली बन्दूक थी और न उनमें इतनी शक्ति थी कि तीन-तीन पत्नियां रख सकें। पर कालूशाह के बेटे थे, अतः हमसे अच्छे थे।

भाभी आयी थी, कालूशाह का स्यापा करने जाने के लिए। मां भी जाएगी। बिरादरी के प्रत्येक परिवार से कोई न कोई स्त्री या पुरुष जाएगा। जाकर सब दुःख प्रकट करेंगे। दुःख था किसी को भी नहीं, उल्टे प्रसन्न ही थे सब। लोग उससे डरते थे, प्रेम कोई नहीं करता था। पर खुलकर यह सब कहने का साहस किसी में नहीं था। मृत्यु के पश्चात् भी विरोध करना अच्छा नहीं था, उसके लड़कों के पास पैसा था। और पैसे से सबको डरना ही चाहिए।

वैसे भी वैर-द्वेष तो जीवन में होता है। मरने के बाद सभी अच्छे हो

जाते हैं। स्यापे में जितने बैन हैं, किसी में किसी की बुराई नहीं होती, गुण ही गुण होते हैं। शुद्ध जीव आता है उस परमपिता के घर से और फिर शुद्ध ही लौट जाता है। सारी मिट्टी, सारा कीचड़ यहीं बटोरता है और फिर यहीं छोड़ जाता है। अतः कालूराम भी बड़ा अच्छा आदमी था।

मां और भाभी और ऐसी ही अनेक औरतें छाती पर हाथ मार-मारकर नाइन के अनुसरण में ज़ोर-ज़ोर से रुदन-भरे स्वर में उसका गुणगान करेंगी। आवाज़ में ही रुदन नहीं होगा, इनकी आंखों से अश्रु भी ऐसे टप-टप टपकेंगे कि साथ बैठी औरत भी समझ नहीं पाएगी कि ये अश्रु झूठे हैं।

फिर ये अपने आंचल से, हल्के से गालों पर से आंसू पोंछेंगी, नाक साफ करेंगी और आश्वस्त होकर ढंग की घरेलू बातें करने लगेंगी जैसे स्यापे पर न आयी हों, किसी महिला-सम्मेलन में आयी हों। बातें क्या होंगी ? कोई किसी के चरित्र पर कीचड़ उछालेगी, कोई किसी का बखान करेगी। पिछले स्यापे से अब तक के बीच बिरादरी की समस्त घटनाओं का ब्यौरा प्रस्तुत होगा और क्षण में ही न्यूज़ बुलेटिन के समान नए जन्मों, सगाइयों, विवाहों तथा मृत्यु की बातें सबमें घूम जाएंगी। स्यापे से लौटी हुई औरतें किसी सेमिनार से लौटे हुए विद्यार्थी से किसी प्रकार कम नहीं होतीं।

भाभी पास आ गई थी। "नमस्ते, भाभी !"

भाभी ज़रा-सा रुकी, "कहां जा रही हो ?"

"जाना-मरना कहां है !" मैं बोली, "यूं ही ज़रा नीचे आयी थी छोटी भाभी के पास।"

"ऐं ! कैसे कुबोल बोलती है।" भाभी ने विरोध प्रकट किया, "जाना क्यों नहीं तुझे ! ज़िन्दगी पड़ी है सारी। पचासों बार तो अभी ससुराल ही आए-जाएगी। वैसे तंग आ गई है इस घर से तो बोल, कहीं कर दें तेरा भी ठिकाना !" भाभी ने बड़ी मधुर-सी मुसकान बिखेरी।

ससुराल की बात छेड़ने का अभिप्राय मुझे चुप कराना ही था। मैं चुप हो गई।

"आ जाओ ! आ जाओ !" भाभी घर में प्रवेश कर रही थी, "रानी! चाची चली तो नहीं गई !"

"नहीं, भाभी !" मैंने बताया, "जाने की तो बड़ी जल्दी थी उसे ! सवेरे से सारा घर सिर पर उठा रखा है मां ने।"

"हां, कहा तो था चाची ने जल्दी आने के लिए।" भाभी ने स्वीकार किया, "पर घर का काम निपटाकर ही आती न ! देर हो गई उसी में।"

भाभी भीतर चली गई।

भाभी अकेली नहीं थी। साथ उसकी भतीजी भी थी—साधारण कद की सामान्य-सी लड़की। गेहुआं रंग था उसका। छोटी-छोटी किन्तु चमकदार आंखें। लोगों को उन आंखों में तेज की छटा दीखती थी, और मुझे उनमें से धूर्तता झांकती हुई प्रतीत होती थी। कह नहीं सकती कि एक ही वस्तु के विषय में दो इतनी विरोधी धारणाएं कैसे बन गयीं ! नाक छोटी-सी थी उसकी। बातें करती तो बड़े-बड़े भद्दे होंठ फूहड़पन से फैल जाते। बालों की लम्बाई बहुत कम थी। शायद इसीलिए वे सदा खुले और कंधों पर बिखरे रहते। सब मिलाकर उसमें ऐसी असाधारणता तो कोई थी नहीं।

वह पहले भी आ चुकी थी यहां। मैं जानती थी उसे। मैं ही क्या, सारा मुहल्ला जानता था। कई तो उसके भक्त भी थे। कहते हैं, उस पर देवी आती है। देवी आती है कि नहीं यह मैं नहीं जानती, पर बहुत बार चढ़ते हुए चढ़ावों को देखकर मैंने भी सोचा है कि मैं भी अपने बाल खोल-कर सिर हिलाना आरम्भ कर दूं और इतना कूदूं कि सिर का एक-एक बाल अपने पृथक् अस्तित्व का पता दे। इतना चीखूं कि अन्त में बेसुध होकर गिर पड़ूं।

पहले वह ऐसी नहीं थी। साधारण-सी लड़की थी, हम ही लोगों जैसी। दो वर्ष पहले वह अपनी नानी के पास गई थी। वहीं पहली बार उस पर देवी आयी थी। उसके बाद तो यह नियम-सा ही हो गया था। महीने में एक-आध बार देवी उस पर दया कर ही जाती थी। उस समय वह अपने होश में नहीं रहती थी। स्वयं कुछ भी नहीं करती थी, कुछ बोलती भी नहीं थी। देवी का स्वर ही उसके मुख से निकला करता था। उस अवस्था में लोग उससे प्रश्न किया करते थे, अपने भाग्य और भविष्य के विषय में। वह उत्तर दिया करती थी। यह क्रम तब तक चलता रहता,

जब तक एक-आध मिनट के लिए अचेत होकर वह अपनी सुध में नहीं आ जाया करती थी।

जब नई-नई देवी आनी शुरू हुई थी, उसके माता-पिता ने बहुत नाक-भौं सिकोड़ी थीं। उन्हें अच्छा नहीं लगा था यह सब। लोगों को आश्चर्य भी हुआ था कि पसन्द न आने वाली कौन-सी बात है इसमें। यदि उनकी बेटी को देवताओं ने चुना है, अपनी दया दिखाई है उस पर तो नाराज़ होने की कौन-सी बात है।

किन्तु उसके पिता का कहना था—देवी आती है तो कोई बात नहीं, किन्तु देवी की चौकियां देने की आज्ञा होती है। देवी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता, इसीलिए चौकियां देनी पड़ती हैं। उस पर एक तो खर्च बहुत हो जाता है और फिर लोग जमा हो जाते हैं। लोगों के आने से इस बात का जो विज्ञापन हो जाता है, वह उन्हें पसन्द नहीं था। लड़का होता तो कोई बात नहीं थी, पर लड़की की इस प्रकार प्रसिद्धि हो, यह किस माता-पिता को अच्छा लगेगा ! जितने अधिक लोग आते थे, उनके आदर-सत्कार में उतना ही खर्च भी होता था।

एक कठिनाई और भी थी : देवी आती तो भक्त उपहार दे जाते थे। उपहारों में फल होते, कपड़े होते, रुपये होते, कुछ भक्ति-विभोर स्त्रियां गहने तक दे जातीं। भाभी के भाई को समझ में नहीं आता कि उस चढ़ावे का क्या करें। फेंक सकते नहीं थे, आखिर मनुष्य थे, और मनुष्य की अपनी हाड़-मांस की कमजोरियां होती हैं। यदि चढ़ावे को रख लेते तो लोगों की जीभ को कौन रोक सकता था।

ये बातें उन दिनों की हैं जब देवी का पदार्पण हुआ ही था। क्रमशः उनकी सारी आपत्तियों तथा अप्रसन्नता को देवी ने जीत लिया। अब देवी के लिए 'प्रवेश निषिद्ध' का बोर्ड हट गया था। उसकी आवश्यकता भी नहीं थी। अलका—बड़ी भाभी की यह भतीजी—घर में कम ही रहती थी। उसका क्षेत्र बहुत बड़ा हो गया था। बहुत सारे भक्त हो गये थे। भक्तों से ही उसको अवकाश नहीं था। उन्हीं के पास रहती थी और सत्संग करती थी।

महीने में एकाध बार घर जाती थी। वहां उस पर देवी अवश्य आती

थी। अपने घर पर जब भी उसमें देवी का प्रवेश होता, वह नाच-नाच-कर एक ही बात कहती—'भगतों पर दया···भगतों पर दया···भगतों पर दया···'

शीघ्र ही किसी भक्त पर दया हो जाती। अलका जाने अपने कपड़ों में से कहां से सौ का एक या दो नोट निकालती और झूमती-झामती भक्त की गोद में उन रुपयों को डाल जाती, "ले भगत, मैं तुझसे प्रसन्न हूं।"

वह भक्त सदा ही उसका अपना बाप होता था।

कभी-कभी दूसरे भक्तों पर भी दया होती, पर ऐसी स्थिति में नोट कभी भी पांच रुपये से अधिक का नहीं होता था।

मैं जब कभी अलका को देखती, मुझे याद आता है कि उस पर पहली बार देवी उसकी नानी के घर आयी थी। उसकी सबसे बड़ी भक्त उसकी नानी ही थी। कहते हैं कि उसकी नानी भी जब इस आयु की थी तो उस पर भी बहुत सारे देवी-देवता आया करते थे।

दोनों भाभियां मिल चुकी थीं। छोटी भाभी बड़ी भाभी से मुन्ने को लेकर प्यार कर रही थी। मुन्ना यूं ही बड़ा प्यारा था। उसे गोद में लेकर प्यार करने की इच्छा होती थी। फिर बड़ी भाभी को प्रसन्न करने, उनसे अपनापन जताने का इससे अच्छा ढंग और क्या हो सकता था कि उनके मुन्ने को बांहों में भींच-भींचकर प्यार किया जाए। बड़ी भाभी ही क्या, किसी भी मां को प्रसन्न करने का इससे अच्छा ढंग और हो ही क्या सकता है।

बड़ी भाभी कमरे का निरीक्षण कर रही थी। कमरा उसका भली-भांति देखा हुआ था, फिर भी उसकी दृष्टि एक कोने से दूसरे और दूसरे से तीसरे की ओर यात्रा कर रही थी। मेरी आंखें भी बड़ी भाभी की दृष्टि का अनुसरण करने लगीं। छत के लकड़ी के लाखे रंग के शहतीर, धुएं से काले, पीले तथा भूरे रंगों का विचित्र-सा मिश्रण हो गए हुए थे। पर छोटी भाभी हैं बड़ी सलीकेदार! मजाल है कहीं ज़रा-सा भी जाला बुन पाए हों मकड़े-मकड़ियां। धुएं से विवर्ण हुए इन शहतीरों का वह क्या करती बेचारी!

रोशनदान छोटे-छोटे थे, पर कई थे। पंखों की ज़ोरदार फड़फड़ाहट करते हुए कबूतर आकर उनमें बैठ जाया करते थे। बैठ ही जाते तो क्या था। कबूतर होते हैं बड़े गंदे। उनकी बीट और छोटे-छोटे पंखों के ढेर! भगवान् बचाए इनसे। अन्त में बचाया था बड़े भैया ने। उन्होंने कहीं से पुरानी जाली लाकर इन रोशनदानों पर मढ़ दी थी। कबूतरों का भीतर आना बन्द हो गया था। आते तो जाली से टकरा-टकराकर लौट जाते। पर कबूतरों ने हार नहीं मानी। रोशनदानों से भीतर नहीं आ पाते थे, अतः आसपास कहीं बैठे रहते—मुंडेरों पर, दरवाज़ों पर या फिर नीचे मिट्टी पर। उन्होंने अपना स्थान नहीं छोड़ा। धीरे-धीरे वे दरवाज़े से भीतर आकर रोशनदानों की जाली के सहारे अपना घोंसला बनाना सीख गए थे। पहले रोशनदान से आते और उसी से लौट जाते थे तो गन्दगी सिर्फ रोशन-दान में ही जमा होती थी, या कभी-कभार ऊपर से नीचे कुछ आ गिरता। अब दरवाज़े से आने-जाने के कारण कमरा भी गंदा होने लगा था। छोटे भैया सोच रहे थे, जाली को उतार दें तो अच्छा है।

बड़ी भाभी अब भी कमरे का निरीक्षण कर रही थी, पर मैं रुक गई।

हमारे या छोटी भाभी के घर कोई आ जाता तो मुझे बड़ा संकोच होता था। बड़ी भाभी से तो कोई दुराव नहीं था। छिपाए तो आदमी उससे, जिसे कुछ मालूम न हो। बड़ी भाभी यहीं रहकर गई थी। फिर उसे क्या धोखा देना! वह बेचारी कौन अच्छी अवस्था में थी।

यह गली और उसके मकान किसी नक्शे के अनुसार नहीं बने थे। जिधर स्थान मिला और जैसे जी चाहा, वैसे ही कमरे बनवा लिये गए थे। या फिर जिन दिनों ये मकान बने थे उन दिनों कोई नक्शे बनाने वाला न रहा होगा। मकान यूं एक-दूसरे से मिले हुए थे कि गली दो फुट भर ही रह गई थी। दो व्यक्ति भी इकट्ठे चलें तो धक्के खाते चलें। एक गाय घुस आए तो गली बन्द। उसे निकालना चाहें तो वह और आगे बढ़ती जाएगी। वह गरीब भी क्या करे, इतनी जगह तो है नहीं कि वह घूमकर पीछे की ओर जाकर गली से बाहर निकल जाए, और कार के समान 'बैक' वह हो नहीं सकती।

आदमी भी कौन यहां बड़े समझदार बसते हैं। किसी ने गली में साइ-

किल अड़ा दी—अब कोई क्या करे! साइकिल तक तो फिर भी गनीमत है। ऐसे-ऐसे बेशर्म बसते हैं कि घर से निकलकर गली की पतली-सी सड़ी नाली पर पेशाब करने बैठ जाएंगे। न आने-जाने वालों की असुविधा का विचार, न बहू-बेटियों की लाल-शरम और वैसे बड़े इज़्ज़तदार बनते हैं।

हमारे सामने वाला मकान बहुत ही ऊंचा है, छा-सा गया है हमारे मकान पर। इतना ऊंचा है कि धूप उसकी दीवारों से नीचे उतर ही नहीं पाती। कड़ी सर्दी में भी हमें ज़रा-सी भी धूप नहीं मिल पाती थी। गर्मियों में ही कौन-सा सुख था। तब यह लम्बूतरा मकान सारी हवा रोक लेता था।

हम फिर भी अच्छे थे, क्योंकि ऊपर की मंज़िल पर थे। छोटी भाभी की बड़ी मुसीबत थी। उन्हें धूप-हवा कुछ भी नहीं मिलती थी। बारिश होती तो दुनिया-जहान का पानी ऊंचे मकानों के परनालों से बहता हुआ उनके आंगन में अवश्य जमा होता था।

यह मकान किसी मुसलमान ने बनवाया था। यह उसका ज़नाना भाग था। चारों ओर से बन्द और ढका-छिपा। एकदम पुराने ढंग का था—दबा-सहमा, जैसी इसमें रहने वाली औरतें रही होंगी। लगता था, मकान को भी उसने बुर्का-सा पहना दिया था।

विभाजन के पश्चात् हम यहां आए थे। सारी बातें तो मुझे याद नहीं, तब मैं काफी छोटी थी। धुंधली-धुंधली-सी कुछ घटनाएं याद हैं। जब से मुझे याद है, हम इसी पोर्शन में हैं। ऊपर हम हैं और नीचे के इस बड़े से कमरे में बड़े भैया, भाभी और छोटे भैया थे। मैंने बहुधा सोचा है कि बहुत अच्छा है कि ये दोनों भैया, मेरे अपने भाई न होकर ताऊजी के लड़के हैं। मैं उनसे कितना प्यार करती हूं। फिर भी अच्छा है कि मेरे अपने भाई नहीं हैं और नाममात्र की एक दूरी है। यदि कहीं वे भी मेरे अपने भाई होते तो वे भी हमारे साथ ही उस छोटे से कमरे में रहते।

फिर छोटे भैया की शादी हो गई और बड़े भैया दूसरे मुहल्ले में चले गए।

बड़े भैया चले क्यों गए—यह मुझे तब समझ में नहीं आया था। अब

समझती हूं। तब यही लगता था कि जहां पहले तीन व्यक्ति रहते थे, वहां अब चार रह लें—ऐसी भी क्या बात है। एक कमरे में आठ-आठ आदमी रह लेते हैं, तो ये दो भाई और दो भाभियां एक साथ क्यों नहीं रह सकतीं !

छोटे भैया अपनी नई-नवेली के साथ इस कमरे में अकेले रह गये, जिसमें एक ओर दो चारपाइयां थीं, दूसरी ओर ट्रंक इत्यादि थे और तीसरी ओर चूल्हा। आंगन के नाम पर कच्ची, गंदी-सी एक नाली थी, जिसकी दुर्गन्ध को भैया ने 'शामे-अवध' का नाम दे रखा था।

नई भाभी पहले बड़ी तनकी-तनकी रहती थी। इस घर में रहना उसे एकदम पसन्द नहीं था। तंग और सड़े हुए मकान तो अलग, नगरों की इस गहमागहमी में भी वह कभी नहीं रही। विभाजन से पहले उनकी सारी ज़मीनें लायलपुर में थीं। लायलपुर की मिट्टी कुछ मांगती नहीं थी, बस उगलती ही जाती थी। दूर-दूर तक फैले हुए खेत थे, जिनमें ढेरों का ढेर अन्न उत्पन्न होता था। बाग थे, जिनकी धरती पर फल बिछे रहते थे। रहट था। दो तगड़े, ऊंचे बैल आंखों पर खोपे लगाए दिन-भर उसे चलाते थे। भाभी के दादा उसे रहट की गद्दी पर बैठा देते थे। भाभी को कुछ करना नहीं पड़ता था। बैल चलते रहते और उसे संतोष रहता कि वह बैलों को चला रही है। दादा भी संतुष्ट रहते कि बच्ची खुश है। गोधूलि के समय वे काम समाप्त कर घर की ओर चलते तो भाभी उनकी उंगली थामे उछ-तली-कूदती घर आ जाती।

विभाजन के पश्चात् वह सब नहीं रहा, पर जालन्धर के ज़िले में कुछ ज़मीन मिली थी उन्हें। वहां लायलपुर वाली बात तो नहीं थी, पर दिल्ली जैसी बात भी नहीं थी। भाभी क्या जानती थी कि शहर इतने गंदे होते हैं—कितने बुरे होते थे !

मैं बहुधा सोचा करती थी कि उसके पिताजी ने उसे ऐसी जगह क्यों ब्याह दिया ?

अपने बारे में सोचती हूं तो कांप उठती हूं, जाने मैं कहां फेंकी जाऊंगी। घर में हालत कुछ बदली-बदली-सी है। घर का कोई भी बड़ा मुझे देखता है तो उसकी आंखों को मेरा इस घर में अब और रहना अनुचित

लगता है। हर रोज़ किसी न किसी माध्यम से मुझे यह संकेत मिल जाता है कि इस घर पर अब मैं बोझ हो रही हूं। लगता है, जैसे किसी किराए-दार ने अवधि समाप्त होने पर भी ज़बर्दस्ती घर पर कब्ज़ा कर रखा हो।

मुझे याद है···

मैं और दिनों के ही समान बैठी थी घर में उस दिन भी। मां कहीं बाहर से आयी थीं। मैं उठी, "मां! कहां गई थीं तुम ?"

मां ने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया। उसने मेरी ओर एक विचित्र दृष्टि से देखा और जड़-सी खड़ी निहारती रही।

मैं भी भौंचक-सी मां को देखती रही। पर सहसा मैंने अपने वक्ष पर उसकी तप्त दृष्टि का अनुभव किया। दृष्टि वहीं ठहरी हुई थी आकर। मैं सकुचा-सी गई। साथ ही मां ने कहा, "गल चुन्नी पा, कुड़िए।"[1]

मां की एक ही दृष्टि ने मुझे अनेक बातें समझा दी थीं।

उसी दिन से मैं कुछ बदल गई थी। मुझमें शर्म और संकोच की मात्रा बढ़ गई थी। उत्सुकता भी बहुत अधिक बढ़ गई थी। तभी से मैंने बड़ी भाभी के मुन्ने को बांहों में दबोच-दबोच, भींच-भींचकर और चूम-चूमकर प्यार करना सीखा था।

छोटी भाभी भी शायद ऐसी ही अवस्था में ब्याह दी गई थी। पर भाभी बड़ी समझदार और धैर्य वाली है। आरम्भ में चाहे वह कितनी ही तनकी-तनकी रहती हो, पर फिर उसने स्वयं को नमा लिया था। इस घर में रहने योग्य ढांचे में ढाल लिया था।

अब तो उतना भी स्थान नहीं है, आधा रह गया है केवल!

एक दिन छोटे भैया बहुत चिन्तित थे। भाभी ने बताया था कि पैसे की तंगी है। पैसे की तंगी किसे नहीं रहती यहां! पर उन्हें कुछ ज़्यादा ही थी। कुछ दिनों तक भाभी और भैया—दोनों ही काफी देर-देर तक रात को जागते रहे। बातें करते रहे और सोचते रहे।

एक दिन भैया एक बढ़ई को बुला लाए। बढ़ई ने कमरे के बीचोबीच सड़ी-सी लकड़ी की एक दीवार खड़ी कर दी और एक के दो छोटे-छोटे

1. गले में दुपट्टा डाल, ऐ लड़की!

कमरे बन गए।

दूसरे ही दिन से नये बने कमरे में एक और परिवार आकर रहने लगा। परिवार बहुत बड़ा नहीं है, पति-पत्नी के अतिरिक्त केवल तीन लड़कियां हैं। बड़ी लड़की आशा मेरी सहेली है।

आशा ने मुझे बताया था, उसके पिताजी किसी फैक्टरी में हैं। काम का ठीक पता नहीं है मुझे, पर उसकी बातों से कुछ-कुछ आभास अवश्य मिल जाता है। उनकी फैक्टरी में चौबीसों घंटे काम होता है। कभी उनकी सवेरे की ड्यूटी होती है, कभी दोपहर की और कभी रात की।

लोहा गलाने की किसी भट्ठी के सामने काम करते हैं वे। शरीर का जितना भाग खुला रहता है, उतना एकदम झुलस-सा गया है। दिन-ब-दिन कमज़ोर होते जाते हैं—जैसे भट्ठी की गर्मी लोहे को न पिघलाती हो, उनके खून को ही सुखाती हो। खून निचोड़कर जैसे किसी को तोड़ दिया जाए, बस ऐसे ही आते हैं काम से वे—थके हुए,एकदम चूर! आकर चारपाई पर गिर पड़ते हैं, बिना किसी से कुछ कहे-सुने। ऐसे समय में कोई उन्हें बुला ले या कुछ कह दे तो शामत आ जाती है उसकी। आशा तथा उसकी बहनें उनसे दूर ही दूर रहती हैं।

प्रसिद्ध है कि वे जुआ बहुत खेलते हैं। अभी उसी दिन ही आशा ने बताया था कि उसके पिताजी जब शाम को घर आए तो बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने छोटी बच्ची को चूम-चूमकर अपना प्यार दर्शाया—जैसा कि वे कम ही करते हैं। आशा और उससे छोटी बहन के गालों और सिर पर चपत मारकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की और बेटियों के सामने ही पत्नी से भी चुहल करने से भी नहीं चूके।

आशा को अपने पिताजी की यह बात एकदम पसन्द नहीं है।

पर उसके पिताजी को इसकी कोई चिन्ता नहीं है। वे जब मूड में होते हैं तो कुछ नहीं देखते। आशा का कहना है कि दोष केवल पिताजी का ही नहीं है। जब कभी मां में काम-इच्छा जागती है तो वह लड़कियों के सामने ही इतना खुला आमंत्रण देती है कि लड़कियां शरमा जाती हैं।

आशा के पिताजी ने सब पर प्यार की वर्षा कर अपनी पिटारी खोली।

वे सबके लिए कुछ-न-कुछ उपहार लाए थे। बेबी के लिए गुड़िया, उससे बड़ी तथा आशा के लिए सलवार-कमीज़ का कपड़ा और मां के लिए साड़ी।

इतनी चीज़ें लाने का अर्थ था कि उसके पिताजी के पास कहीं से इतने पैसे आ गए थे कि उन्हें लुटाने में भी कोई संकोच नहीं होता। उस दिन पहली तारीख भी नहीं थी। वेतन का प्रश्न नहीं था और लाटरी उनकी निकली नहीं थी। इसका एक ही अर्थ था और उसे आशा भली-भांति समझती थी—कि ये सारे रुपये जुए में जीते गये थे। इसका समर्थन उसके पिता के मुख से आने वाली हल्की-सी दुर्गन्ध तथा आंखों की खुमारी ने कर दिया था।

सदा ही ऐसा नहीं होता था। बहुधा वे हार भी जाते थे। पिछली बार हारकर जब घर आए थे तो तूफान खड़ा हो गया था। शराब बहुत अधिक पी रखी थी। जब भी हारकर आते हैं, ऐसा ही होता। जाने शराब के कारण हारते या हारने के कारण पीते।

उस दिन शराब के कारण होश नहीं था उन्हें। क्रोध बहुत अधिक चढ़ा हुआ था। आते ही उन्होंने छोटी बेबी को दो-तीन तमाचे लगा दिए। मुख से गंदी गालियां धाराप्रवाह रूप में बह रही थीं।

आशा दुबक गई थी एक कोने में। ऐसी अवस्था में कौन जाता सामने! पर आशा से छोटी—ललिता—को इतनी समझ नहीं थी। उसे ऐसा थप्पड़ पड़ा कि दांत हिल गए। सहम गई बेचारी, रोई तक नहीं।

फिर बारी आई थी उनकी मां की। तब क्या हुआ—यह आशा ने बताया नहीं था—बता नहीं पाई थी बेचारी। हम सबने देखा था कि उसकी मां बचने के लिए कमरे से बाहर भाग आई थी। बेचारी की बड़ी बुरी अवस्था थी। अपने फटे-नोचे-खसोटे हुए पेटीकोट को हाथ से कमर पर टिकाए हुए रोनी-सी सूरत में गली में खड़ी वह हांफ रही थी। गली की औरतें उसे किसी और घर में ले गईं। मर्दों ने आशा के बाप को समझाने की कोशिश की, पर उस समय कुछ समझने की स्थिति में नहीं था वह। हारकर उसे कमरे में बन्द कर दिया गया। बड़ी देर तक वह भीतर से दरवाज़ा पीटता रहा। फिर शायद थककर सो गया।

बड़ी भाभी निरीक्षण कर चुकी थी—कमरे का, आंगन का, दीवारों का और उनके बीच घिरी कच्ची मिट्टी का। उस कच्ची मिट्टी पर बैठ जो थोड़ा-सा खुला आकाश नज़र आता था, उसे भी बड़ी भाभी काफी देर तक देखती रही थी। जाने क्या देखती रही थी खुले आकाश पर।

अब भाभी बातें करने के मूड में दीखती थी। काफी देर से कोई बात नहीं हुई थी। शायद बड़ी भाभी भी सोच रही होगी कि किसी के घर आकर इस प्रकार बुत बने चुपचाप बैठे रहना भले आदमियों का तौर-तरीका नहीं है।

"फर्श अभी तक पक्का नहीं करवाया, कांता!" बड़ी भाभी ने निरीक्षण से उत्पन्न जिज्ञासा प्रकट कर डाली, और साथ ही अपना अनुभव भी कह सुनाया, "बरसातों में तो कच्चा फर्श बड़ा कष्ट देता है।"

"वे कह रहे थे, जल्दी ही करवा लेंगे!" छोटी भाभी बेपरवाही से बोली और मुन्ने को उछाल-उछालकर हंसने की चेष्टा करने लगी।

छोटी भाभी झूठ बोल रही थी। मेरे सामने ही बात हुई थी। भैया ने कहा था कि आजकल सीमेंट और ईंटें दोनों ही बहुत महंगे हैं और उनके पास एकदम पैसे नहीं हैं।

भैया किसी के पास खराद की मशीन पर काम करते हैं। सवा सौ, डेढ़ सौ रुपये मिलते होंगे उन्हें, कठिनाई से। घर की आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद कुछ बचना मुश्किल है। पर भाभी को कोई झूठी कैसे कह सकता है। पति के पास पैसे न हों तो फर्श पक्का करवाने का विनम्र-सा स्वप्न भी वह न देखे?

बड़ी भाभी ने बहुत देर बाद बात की थी, पर अनजाने में उसका हाथ दुखती रग पर जा पड़ा था, उसे स्वयं भी लगा। वातावरण बोझिल-सा हो गया था।

छोटी भाभी मुन्ने को उछाल-उछालकर जबर्दस्ती हंसाने के प्रयत्न से प्रकट कर रही थी कि वह इस विषय पर बात करना नहीं चाहती।

मौन लम्बा होता तो गहरा भी हो जाता। बड़ी भाभी ने इसे तोड़ने का फिर प्रयास किया, "रानी! ज़रा देख, चाची तैयार हैं क्या?"

बड़ी भाभी ने अपने जानते, मौन भी तोड़ा था और विषय का रुख

भी फेर दिया था। पर अब अप्रसन्न होने की बारी मेरी थी।

"जाती हूं, भाभी !" मैंने कहा।

अपनी उदासीनता दिखाने के लिए मैंने भी छोटी भाभी के समान ही मुन्ने की आड़ ली। मैं छोटी भाभी से मुन्ने को लेने की चेष्टा करने लगी। पर छोटी भाभी भी जानती थी कि मुन्ना उसने मुझे दे दिया और वह खाली हो गई तो उसे बड़ी भाभी से बातें करनी होंगी और कौन जाने कैसी बातें आरम्भ हो जाएं। कहीं कोई ऐसी बात न हो जाए, जिससे उसे आंखें चुरानी पड़ें।

बात अच्छी नहीं थी कि अपनों से भी इस प्रकार दुराव करना पड़े। पर क्या किया जा सकता है ! कोई एक बात हो तो कोई किसी से कहे-सुने भी। जब आत्माओं में ही घाव भर जाएं, किसी की सहानुभूति की मंद बयार भी उनमें दर्द जगा जाए, तो कोई क्या करे ! बड़ी भाभी ने कभी नहीं चाहा होगा कि छोटी को उसकी बात से अपनी निर्धनता का अनुभव हो। उसने कभी नहीं सोचा होगा कि मैं ऊपर जाकर यह भी देखना पसन्द नहीं करूंगी कि मां तैयार हुई है अथवा नहीं। मां से मुझे कोई बैर नहीं है। पर अब तक दूसरे लोगों के विषय में सोचते हुए, मैं स्वयं को, अपने परिवेश को भूलकर एक प्रकार से पीड़ारहित थी। ऊपर जाकर वह अवस्था रह नहीं पाएगी।

ऊपर जाने का मेरा मन नहीं था।

हमने अपनी मां को मां के रूप में शायद ही कभी देखा हो। वह अंग्रेज़ों के ज़माने की थानेदार अधिक है, मां कम। वह चाहती है कि मैं चौबीसों घंटे रसोई में घुसी रहूं और घर का काम करती रहूं। घर का और काम तो दूर—रसोई का ही इतना काम होता है कि क्या कहूं। रोटियां भी तो कितनी सारी पकानी पड़ती हैं। बाबूजी, रमेश, मैं—और मुझसे छोटी चार बहनें।

अकसर सोचती हूं कि इतने बच्चे पैदा करते समय मां ने क्यों कुछ भी नहीं सोचा। लगता है, मां और बाबूजी—दोनों को और कोई काम ही नहीं था। अब मां चाहती है कि मैं इतने सारे लोगों के लिए खाना पकाऊं, उन सबके कपड़े धोऊं, पढ़ूं और पढ़कर हर साल पास होती

जाऊं। मां ने कभी नहीं सोचा, कभी नहीं जाना कि पढ़ने के लिए स्वच्छ निर्मल मन की ज़रूरत होती है, जिसमें अन्य कोई चिंता न हो। पुस्तकों को पढ़ने के लिए समय की ज़रूरत होती है—जो मुझे कभी नहीं मिलता। उसे तो जब कहूं—'मां, मुझे पढ़ना है'— तो उत्तर केवल एक ही होता है, "लओ स्यापा ! पढ़ना है। पुराने समय में लड़कियां घर का सारा काम करती थीं—कभी 'ना' नहीं सुनी थी किसी मुख से। अब इनसे सुनो 'पढ़ना है'। पढ़ना न हो गया, स्यापा हो गया।·अरी, पढ़ के क्या करेगी तू ? लाट साब बनेगी। खसम तो गुत्त पकड़कर चूल्हे में ही झोंकेगा तुझे। बड़ी आई पढ़नेवाली। लड़कियां चूल्हे-चौके का काम भी न करें तो उनका अचार डालना है हमें !"

छोटा-सा एक कमरा है हमारे पास, ऊपर की मंज़िल पर। मां चाहती है कि मैं दिन-भर उसी में टंगी रहूं। उसके अनुसार शरीफ घरों की बहू-बेटियों के तौर-तरीके यही हैं कि एक बार यदि कमीज़ के समान किल्ली पर टांग दी जाएं तो टंगी रहें। मेरा नीचे आना उसे ज़हर लगता है। गली की किसी लड़की के पास खड़ी हो जाऊं तो मां की आंखों में खून उतर आता है। कहती है, वे लड़कियां खराब हैं।

मैं किल्ली पर टंगी कमीज़ बनने से इनकार करती हूं। मैं अपने को इतना प्राणहीन नहीं समझती कि अपने-आपको उस तरह की शरीफ घरों की बेटी बना लूं।

वैसे यह बीमारी आसपास के हर घर, हर परिवार में पलती है। प्रत्येक परिवार के लोगों की गलतफहमी है कि वे शरीफ हैं।

हमारे पड़ोस वाले मकान में रहती है निर्मला। उसका नाम सुनकर मां गालियां दिए बिना रहती ही नहीं। मेरी मां तो मेरी मां, उसकी अपनी मां भी उसे गंदी-गंदी गालियां देती है। निर्मला इन छोटी-छोटी संकीर्ण बातों से बहुत ऊपर उठ गई है। गालियां सुनती है, एक उपेक्षाभरी मुस्कान बिखेरती है और इस ढंग से चली जाती है कि यदि गालियां देने वाले की भावनाएं मरकर सड़-गल न गई हों तो उसे लगता है कि निर्मला उसका अपमान कर गई है।

निर्मला अपने फैशनों के लिए खटकती है गली-भर की आंखों में वह छोटे-छोटे पायंचों वाली सलवार और कसी-कसी कमीज़ें पहनती है। उसका दुपट्टा बड़े अन्दाज़ से पड़ा होता है गले में—उभरे हुए वक्ष से उसका कोई वास्ता नहीं है, कमीज़ें वह ऐसी पहनती है कि उनके बीच में से भी जोड़-जोड़ दिखता है, और अंग-अंग थिरकता है।

निर्मला का दोष यह नहीं है कि वह ऐसे कपड़े पहनती है। उसका दोष यह है कि वह इस मुहल्ले की इस सड़ी-सी गली में रहकर भी ऐसे कपड़े पहनती है। नई कॉलोनियों—पढ़े-लिखे फैशनेबल लोगों के मुहल्ले की अमीर लड़कियां ऐसे ही कपड़े पहनती हैं। वे ही लड़कियां जब फैशनेबल बाज़ारों में घूमती नज़र आती हैं तो हमारी ही गलियों और मुहल्ले के शरीफ और शरीफज़ादे उन्हें अनेक हसरतभरी दृष्टियां अर्पित कर, ठंडी सांसें भर खड़े-के-खड़े रह जाते हैं। और लड़कियां भी ईर्ष्या से देखती हुई कहती हैं, "कित्ती सुन्दर है! है न?"

मां कितना मना करे, कितना डांटे-फटकारे, कितनी ही गालियां दे—पर मुझे निर्मला में एक आकर्षण-सा प्रतीत होता है। उसमें कुछ ऐसा है कि उसकी सारी बदनामी के होते हुए भी वह मुझे कहीं-न-कहीं से खींचती है।

ये कमीज़ें जो निर्मला पहनती है, काम-काज के लिए सुविधाजनक नहीं हैं। चलने में इनसे कठिनाई होती है, बस पर ये नहीं चढ़ने देतीं और झटके से बैठो तो ये चर्र-र्र-र्र बोल जाती हैं।

"निर्मला! तू ऐसी कमीज़ें क्यों पहनती है?" मैंने पूछा था उससे।

उसने बड़ी विचित्र-सी दृष्टि से देखा था मुझे। ऐसी दृष्टि से, जैसे मैंने कोई बचकाना प्रश्न कर दिया हो। फिर धीरे से बोली, "तू नहीं जानती?"

"ऊं-हूं।" मैं बोली।

"समझ भी नहीं सकती?" उसने पूछा।

"नहीं।" मैंने फिर इनकार किया।

"बड़ी भोली है!" उसने प्यार से मेरे गाल थपथपा दिए, "सुन, ये कमीज़ें इसलिए नहीं पहनती कि इनसे काम करने में सुविधा हो और मैं

मां का चूल्हा-चौका करूं—"

"तो ?"

"इसलिए पहनती हूं···"उसके मुख पर एक खिलंडरा-सा भाव आवारा-गर्दी कर रहा था, "कि इन कमीज़ों के कारण कितने ही लड़के मुझ पर मरते हैं।"

"लड़कों के मरने से क्या लाभ ?" मैंने भी चुहल की।

"मेरी लाडो !" उसने मेरे मुख को अपने हाथों में ले लिया और मेरी आंखों में सीधे देखते हुए बोली, "लड़के जब मरने लगते हैं तो उनकी जेब से एक-एक पैसा निकलवाया जा सकता है।"

मैं भौंचक खड़ी निर्मला का मुंह देखती रही। यह लड़की पैसों के लिए अपने शरीर का प्रदर्शन करती फिरती है। यह तो खुला आमंत्रण है। कोई अधिक पैसे देकर उस शरीर को छू भी सकेगा और उससे भी अधिक पैसे देकर उसका भोग भी कर सकेगा। छिः, कितनी बुरी बात है !

'पर निर्मला !" मैं बोली, "तेरी मां तो इतनी-इतनी गालियां देती है तुझे, केवल इन्हीं कमीज़ों के कारण !"

"तू समझती नहीं, रानी !" निर्मला बड़ी ज़ोर से हंसी थी, "अगर मां को भी कोई लड़का दस का नोट पकड़ाकर बांहों में भरकर चूम ले तो मां भी ऐसी ही कमीज़ें पहनने लगे। पर बेचारी को कोई पूछता ही नहीं।"

"चल, चुड़ैल !" मैं चली आई, मीठी-सी गुदगुदी मन में लिये।

लौटकर मैं काफी देर तक सोचती रही थी, निर्मला के विषय में। इतना ज़रूर था उसमें कि बड़ी सहजता से वह किसी पर भी उसका छिड़काव कर सकती है। कमबख्त अपनी मां का भी मज़ाक उड़ाने से नहीं चूकती। वह भी मां के बुढ़ापे का, जो औरत की सबसे बड़ी मजबूरी है।

कैसी भी हो निर्मला—गलत सोचती हो या ठीक—पर बातें उसकी अच्छी लगती हैं। उसमें साहस है। वह नई बातें सोचती है—चाहे गलत ही सोचती हो—उन्हें सबके सम्मुख कह डालती है और फिर उन पर चलती भी है। शायद इसी साहस के कारण, मेरे लिए उसमें एक प्रकार का

आकर्षण उत्पन्न हो गया है। जी चाहता है, उसकी सुनती ही जाऊं, पर मां उसके पास ठहरने ही नहीं देती। मां की क्या बात है। उसे तो मेरा यहां—छोटी भाभी के पास आना भी अच्छा नहीं लगता।

मां को हमेशा संदेह रहा है कि भाभी मुझे उसके विरुद्ध उकसाती है और शायद उसी का परिणाम है कि मैं काम नहीं करती।

मां भी विचित्र है। मन में एक बात आ जाए सही। फिर मजाल है कि कभी हट जाए। उसने सोच रखा है कि मैं काम नहीं करती। अब चाहे मैं सवेरे से शाम तक काम करते-करते मर जाऊं, मां को यही लगेगा कि मैं काम नहीं करती। कौन समझाए उसे!

मैं न उसे समझाने की चेष्टा करती हूं, न काम करके ही उसकी धारणा बदलना चाहती हूं। काम न करने की बात कह, वह मुझे बदनाम करती है तो मैं काम न कर स्वयं को उस बदनामी के योग्य सिद्ध करती हूं, ताकि मेरी अच्छी मां को झूठा न बनना पड़े। वह जो कहती है, वही सत्य हो।

जहां तक भाभी का संबंध है, वह बेचारी मुझे क्या उकसाएगी। वह आदर्श बहू है इस घर की। मेरी मां—अपनी चचिया सास—को भी वह सास का पूर्ण आदर देती है। एक तो बड़ी भीरु है, ऊपर से मां भी बड़ी अड़ियल औरत है—मुखाकृति की कोई रेखा कभी ढीली पड़ती ही नहीं है। इससे भाभी और भी दबी रहती है। भाभी में भाभीपन काफी है, कभी-कभी तो वह भाभी का स्थान छोड़कर मां का स्थान ग्रहण कर लेती है—कितना वात्सल्य है उसमें। उसने कभी किसी से कोई चीज़ लेनी नहीं चाही। जितना दे सकती है, देती ही रहती है। सदा मुझे मां की बात मानने और उसका काम करने के लिए कहती है। समर्थन में इतने उपदेश पिलाती रहती है मुझे।

पर जब कभी मां से खटपट होती है और मैं आकर भाभी के सामने रोती हूं तो वह अश्रु ज़रूर पोंछती है मेरे।

अभी पिछले दिनों ही मां ने जाने किस छोटी-सी बात पर लकड़ी की चौकी उठाकर दे मारी थी मुझे। मैं इस प्रकार की मार के लिए क्षमा कैसे कर सकती थी मां को! रोई मैं नहीं, गिड़गिड़ाई भी नहीं, क्रुद्ध भी

नहीं हुई। चुपचाप शांत भाव से नीचे उतर आई और भाभी को सारी बात बता दी। उस दिन भाभी ने मां का किसी भी प्रकार का समर्थन नहीं किया। मुझे समझाया भी नहीं। जो कुछ हुआ था, चुपचाप उसे सुनकर स्वीकार कर लिया। मैं दिन-भर भाभी के पास रही, वहीं खाना खाया और वहीं सोने का विचार कर रही थी कि रमेश आया था नीचे मुझे लेने। मेरा भैया—बेचारा सदा खुश वह भी नहीं रहता मुझसे। पर जब कभी प्यार जागता है तो उसी के मन में जागता है।

उसने मुझे वचन दिया कि यदि मां ने एक शब्द भी मुझसे कहा तो वह स्वयं ही मुझे नीचे छोड़ जाएगा और फिर ऊपर चलने के लिए कभी नहीं कहेगा। मैं जानती थी, उसके विरुद्ध बोलने का साहस नहीं है मां में। इसलिए मैं चली गई उसके साथ और सचमुच मां ने कुछ भी नहीं कहा। बस घूरती रही।

कभी-कभी सोचती हूं—मां शायद इसीलिए नाराज़ रहती है भाभी से। भाभी के यहां होने के कारण वह मुझे सता नहीं पाती, तड़पा नहीं पाती। वह चाहती है कि वह मुझे डांटे, मारे, मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दे, पर फिर भी मैं उसके पैरों पड़ूं, क्षमा मांगूं, रोऊं, गिड़गिड़ाऊं। पर इसका अवसर नहीं मिलता उसे। यदि भाभी यहां न हो, तो शायद ऐसा हो सके। मैं भूखी मरना और ठंड में बाहर खुले आकाश के नीचे अकड़कर मरना पसन्द न करूं, तो मुझे मां की इस इच्छा की पूर्ति भी करनी पड़े।

अभी भी मैं भाभियों को छोड़ ऊपर जाना नहीं चाहती थी। बड़ी भाभी की उपेक्षा-सी करती हुई मैं छोटी भाभी से मुन्ने को लेने की कोशिश करती रही। पर मुन्ना आया नहीं, जाने क्यों उसे छोटी भाभी के पास रहना ही ज़्यादा अच्छा लग रहा था। मुझे भी ज़िद थी। इतना-सा बच्चा और वह भी अपने मन की करे। मैं क्या इस पर भी अपनी इच्छा नहीं लाद सकती! मैंने भाभी से उसे ज़बर्दस्ती ले लेना चाहा, पर वह मुझसे भी अधिक समझदार निकला—रोने लगा। उसके रोने के सम्मुख मेरा वश नहीं चल सकता था। क्रोध-सा आ गया।

"जा तो रहा है स्यापा करने!" मैं झल्लाकर बोली, "वहीं रो लेना

जाकर, यहां क्यों चीख रहा है!"

मुन्ना फिर नहीं चीखा, पर लकड़ी की दीवार के उस पार से आशा की छोटी बहन चीख रही थी। जाने क्यों रो रही थी वह।

"अरी आशा!" आशा की मां का क्रोध से भरा उनींदा स्वर सुनाई पड़ा, "झोंक इसको चूल्हे में!"

यह उनका रोज़ का क्रम था। आशा की छोटी बहन इसी तरह रोज़ रोती-चीखती रहती थी और उसकी मां इसी तरह चीखती रहती थी।

आशा कहीं खिसक गई थी। उसका भी यह रोज का क्रम था। उसकी मां जब दोपहर को अफरकर खा लेती और तानकर सो जाती तो आशा कहीं-न-कहीं चली जाती थी। उसे घर में बैठना अच्छा नहीं लगता था। वह आजकल निर्मला से बहुत हिल-मिल गई थी। उसी के समान शोख और खुली बातें करने लगी थी, उसी के समान बेधड़क होकर मां की उपेक्षा करने लगी थी और उसी के समान तंग, फंसी-फंसी कमीज़ें पहनने लगी थी।

"कहां मर गई कुतिया!" आशा की मां फिर चीखी और बड़ी देर तक बड़बड़ाती रही।

जाने आशा की मां को नींद क्यों इतनी प्यारी है। दिन-भर सोती ही रहती है, जैसे रात-भर जागती रहती हो। अब वह इसी तरह पड़ी चीखती रहेगी, आशा को गालियां देती रहेगी। इतना नहीं होगा कि उठकर स्वयं ही देख ले कि बच्ची क्यों रो रही है।

"इनके घर का क्लेश कभी भी समाप्त नहीं होता।" बड़ी भाभी बड़ी देर के बाद बोली थी।

"हां।" छोटी भाभी धीरे से बोली, "दिन-भर ऐसे ही चलता है इनका।"

कोई गोपनीय बात करनी हो तो इसी प्रकार स्वर दबाकर ही बोलना पड़ता है, नहीं तो एक-एक स्वर आशा के कमरे में और उधर का एक-एक शब्द इधर सुनाई पड़ता है।

आशा बता रही थी कि रात को भैया और भाभी के करवट बदलने से चारपाई की आवाज़ तक उन लोगों के कमरे में सुनाई पड़ती है। रात

को कभी-कभी बड़ी देर में जब ज़रा-सा स्वर होता है या भैया-भाभी के वार्तालाप का एक-आध शब्द उधर सुनाई पड़ता है तो आशा की मां उसके पिताजी को सम्बोधित करके बड़े धीमे से कहती है: "अजी ! गोपाल और उसकी औरत अभी तक जाग रहे हैं।"

"तुमने ध्यान दिया है कभी," आशा ने मुझसे पूछा था, "कि मां हमेशा 'औरत' शब्द का प्रयोग क्यों करती है, 'पत्नी' या 'घरवाली' क्यों नहीं कहती ?"

"चल, हट, मरी !" मैंने उसे प्यार से डांट दिया था, "तेरे पिताजी क्या कहते हैं, यह बता ?"

"पिताजी !" आशा बोली, "पिताजी आजकल काम कुछ ज़्यादा कर रहे हैं शायद ! भट्ठी के सामने काम करने से बहुत कमज़ोर-से हो गए हैं। वे अकसर खीजकर कहते हैं, तो तुम भी मर रहो न ! या न हो तुम भी गोपाल के पास चली जाओ !"

पर डांट के बाद भी उसकी मां सोती नहीं है। बार-बार कुछ-न-कुछ कहती ही रहती है और कभी-कभी तो उठकर पिताजी की चारपाई पर भी जा बैठती है। पर उसके पिताजी भी करवट बदले पड़े रहते हैं और आशा अधमुंदी-अधखुली आंखों से सब कुछ देखती रहती है।

"तो आशा !" जाने मुझमें कैसी गुदगुदाती-सी जिज्ञासा उत्पन्न हो गई थी, "तुम्हारे माता-पिता···"

"चल हट, मोई, सिर-सड़ी !" आशा झल्ला पड़ी, "मुझसे कैसी-कैसी बातें पूछती है। तू बताएगी अपने मां-बाप के बारे में ?"

"नहीं ! पर मैं तो ये सब भी कभी नहीं बताती।" मैंने ज़िद की, "सच बता, वे कभी भी···"

"नहीं !" आशा बोली, "महीने में एक-आध बार। पर मां कभी भी संतुष्ट नहीं होती।"

मैंने देखा, आशा के मुख पर अब चुहल नहीं थी। थोड़ी देर पहले तक उसका हंसता-मुसकराता-शरमाता मुख अब जैसे विषाद की आग से झुलस-कर काला पड़ गया था। बड़ी उदास थी वह।

पर फिर भी रहा नहीं गया मुझसे। पूछ ही बैठी, "तो आशा, तुम

सब…"

"कौन जाने किसके हैं !" वह बहुत सहज भाव से बोली, जैसे यह विचार कितने दिनों से उसके मस्तिष्क में चल रहा हो।

वह उदास हो गई थी अब बहुत अधिक। मुझसे और कुछ पूछा न गया। पूछना शेष भी क्या था अब।

सीढ़ियों पर धम्-धम् का स्वर हुआ और मैं समझ गई कि मां आ रही है। मैं मां की चाल को ध्वनि से ही पहचान लेती हूं। मैं ही क्या, कोई भी पहचान सकता है। इतना बड़ा विराट, बेढब शरीर और चलते पर चप्पल की फटर-फटर—कौन नहीं पहचानता। सीढ़ियां उतरती तो सीढ़ियां उतरने का कम, तोड़ने का अधिक आभास मिलता।

मां स्वयं ही आ रही थी तो उसे बुलाने के लिए ऊपर जाने की आवश्यकता नहीं थी। मुझे अच्छा लगा, ऊपर जाना नहीं पड़ा और बड़ी भाभी की अवज्ञा भी नहीं हुई।

"भाभी ! मां आ रही है।"

"अच्छा !" भाभी खड़ी हो गई।

भाभी ने अपना आंचल-वांचल ठीक किया। यह मां को पैरी-पौना करने की तैयारी थी।

मां उतरी, तो भाभी ने झुककर पैर छुए।

"ठंडी रै, साईं भाग लाई !" मां मुझे देखकर चिंघाड़ी, "तू यहां मरी है, मैं तुझे दुनिया-जहान में खोज आयी। चल ऊपर !"

"चली जाती हूं। तुम जाओ, स्यापा कर आओ।" मैंने 'स्यापा' पर ज़ोर दिया।

मुझे बड़ा बुरा लगता है मां का यह व्यवहार। पर चूकती वह भी कभी नहीं। जब कभी ज़रा-सा बाहर देखा, 'चल घर।' जैसे मैं भी कोई मुर्गी होऊं कि बाहर देखते ही डरबे में हांक दी जाऊं।

मुन्ने को भाभी ने ले लिया और थैला भी उठा लिया। थैले में शायद मुन्ने के कपड़े, दूध पीने की बोतल और एक-आध तौलिया था। यह जाने की पूरी तैयारी थी।

भाभी को जाते देख मैं उदास-सी हो गई। सोचा, भाभी मुन्ने को छोड़ जाती तो कितना अच्छा होता। मैं उसे खिलाती, नचाती, कुदाती, चूमती और फिर छाती से लगाकर ज़ोर से भींच लेती।

देखा, बाबूजी भी ऊपर से उतर रहे थे। तो, ये भी जा रहे हैं। बाबूजी वैसे कहीं जाते-आते कम ही हैं। घर में ही उन्होंने वानप्रस्थ आश्रम ले रखा है। स्वयं कहीं नहीं जाते तो न जाएं, पर वे तो चाहते हैं कि कोई और भी कहीं न जाए। भला कोई पूछे उनसे कि वे तो जीवन जी चुके, जो देखना था देख चुके और शायद उनका मन भर चुका है, फिर दूसरे क्या जीवन न जिएं, उनके कहे को मान सब संन्यास ले लें !

आज बाबूजी भी जा रहे थे। कालूशाह के स्यापे की बात है, न जाने का दुस्साहस कैसे करें। अब कालूशाह न सही, उसके बेटे तो हैं, और फिर उनके बेटों के पास पैसा है। बाबूजी के लिए वे बड़े आदमी हैं। बड़े आदमियों के घर कुछ हो जाए और बाबूजी न जाएं—ऐसा नहीं हो सकता।

घर में कोई नहीं रहेगा, तो मैं छोटी भाभी के पास बैठी रहूंगी। आज तक छोटी भाभी के पास जी भरकर बैठने की मेरी साध ही पूरी नहीं हुई। एक अतृप्ति-सी है। छोटी भाभी आरंभ से ही मुझे अच्छी लगती रही है, आज भी अच्छी लगती है। कह नहीं सकती, क्यों उसी से बातें करने की इच्छा होती है, उससे बातें कर मन प्रसन्न रहता है।

और यह भी तो बैठी है अलका—बड़ी भाभी की भतीजी। इससे भी बातें करूंगी। मुझे न यह अच्छी लगती है और न इस पर आने वाली देवी पर कोई श्रद्धा है। यदि सचमुच देवी इस पर आती ही है तो देवी के गलत चुनाव पर खेद अवश्य है।

पर किसी समय बातें करने में क्या बुराई है। यदि वह और कोई बात न कर देवी की ही बातें करे, तो मैं उसका और उसकी देवी का मज़ाक तो उड़ा ही सकती हूं।

मां घर में होती है, तो न कहीं जाने देती है, न किसी से बातें करना ही उसे सुहाता है। मैं यदि काम पूरा कर किसी सहेली के पास चली जाऊं, किसी से बातें करूं तो मां को हानि तो कोई नहीं होती, पर वह यह देख

नहीं सकती। अपने अधिकार में पाकर दूसरे व्यक्ति को अधिक से अधिक विवश और निरीह देखकर उसे सुख मिलता है। दूसरे को तड़पाकर उसे अपनी शक्ति का बोध होता है, और उससे उसे सांत्वना मिलती है। मां की इस भावना के कारण बाहर न जाकर अपने कोठरीनुमा कमरे में पड़े रहना बहुत बड़ी यातना है। लगता है, जैसे उस अंगीठी से निकलता हुआ समस्त धुआं मेरे भीतर घुसकर मेरे प्राणों का दम घोंट रहा है।

बाबूजी आए। भाभी और मां चल पड़ीं। मैं खड़ी देखती रही। जब वे लोग चले गए तो मैं मुड़ी।

"चले गए ?" छोटी भाभी ने पूछा।

"हां।" मैंने कहा।

"चलो, ठीक है।" भाभी धीरे से मुसकराई।

उत्तर में मैं भी वैसे ही मुसकराई, जैसे कहा हो, "चलो, ठीक है, बला टली।"

"ओ री ! ओ आशा ! खसम-खानी!" आशा की मां लकड़ी की दीवार के उस पार से चीख रही थी, "कहां मर गई है ?"

"रानी !" छोटी भाभी बोली, "आज फिर सवेरे कोई झगड़ा हुआ था क्या ?"

"वह तो होता ही रहता है, भाभी !" मेरी खीझ हंस पड़ी, "रमेश का मुंह बहुत खुल गया है और हाथ भी।"

"क्या हुआ ?"

"होगा क्या !" मैं पहले ही भाभी को सुनाने को तैयार बैठी थी, "मैं पढ़ रही थी। उसने कहा, 'कमीज में बटन लगा दे।' मैंने कहा, 'ज़रा ठहर जा, लगा देती हूं।' बस नवाब साहब को गुस्सा आ गया। दो-चार गालियां दीं और मारने की धमकी दी। मुझे भी क्रोध आ गया। अभी परसों तो चिमटे से मारा था उसने। उसकी पीड़ा तो अभी गई नहीं थी, और मारेगा !"

"अच्छी आदत नहीं है !" भाभी बोली, "इतनी बड़ी बहन को भी मारता है कोई। चाचाजी मना नहीं करते उसे ?"

"बाबूजी कुछ नहीं कहते।" मैंने बताया, "रमेश ही तो कमाता है न

घर में, इसलिए कोई कुछ नहीं कहता। मां तो चाहती ही है कि मुझे मार पड़े।"

"क्यों, चाची क्यों चाहती हैं ?" भाभी ने यूं कहा, मानो कह रही हो, 'नहीं, चाची यह नहीं चाहती !'

"क्यों चाहती हैं, मैं नहीं जानती।" मैं बोली, "पर मुझे लगता है कि मुझे पीटकर अथवा किसी से पिटवाकर उसे सुख मिलता है। भाभी !" जाने क्यों मैं हिचक गई पर फिर कह चली, "सच मानो, मुझे यही लगता है कि मां को मैं अच्छी नहीं लगती और जैसे ताने वह मारती है, उससे लगता है कि उसे मेरा जवान होना नहीं भाता। कह नहीं सकती, उसके मन में क्या है, शायद उसे मेरे जवान होने के साथ-साथ अपना बूढ़ा होना याद आता है। मेरे गोरे-चिट्टे चिकने शरीर के साथ अपनी झुर्रियोंदार अनाकर्षक चमड़ी याद आती है। इसीलिए मुझे मार-मारकर, यातना दे-देकर वह मेरे शरीर को भी नीला, दागदार और भद्दा बनाना चाहती है…"

मैं आवेश में नहीं, पूरे होश-हवास में बोल रही थी। मैं यह भी जानती थी कि भाभी को मां से कोई प्रेम नहीं है, पर शिष्टाचारवश अपनी चचेरी सास के विषय में कही बातों का विरोध वह करती है। मेरे मुंह से अपनी मां के विषय में ऐसी बातें सुनकर उसे आश्चर्य भी हो सकता है। पर मैं क्या करूं, मैं अपने को रोक नहीं पाती। मैं यह सब कहना नहीं चाहती, पर कह जाती हूं, क्योंकि इन बातों का इतनी तीव्रता से अनुभव किया है कि न कहूं तो पागल हो जाऊं, और फिर भाभी से न कहूं तो किससे कहूं ! भाभी चाहे विरोध ही करे, पर मैं अपनी बात तो कहूंगी ही…

…भाभी ने विरोध नहीं किया। भाभी ने आश्चर्य प्रकट किया। "रानी, तू कैसी-कैसी बातें करती है अपनी मां के विषय में।"

मैं क्या उत्तर देती भाभी को। हो सकता है वह मेरी बात का विश्वास भी न करती हो, क्योंकि उसकी मां ऐसी नहीं थी। भाभी ने अपनी मां और घर के अन्य लोगों के विषय में बहुत कुछ बताया था। जब वह नई-नई आयी थी तो केवल अपने मायके की ही बातें करती थी। उसकी मां अपने बच्चों की उन्नति देख, उन्हें बढ़ता देख, जवान होते देख, प्रसन्न

होती थी। उसने अपने बच्चों की खुशी में अपनी खुशी मिला दी थी। शायद उसकी अपनी सारी इच्छाएं पूरी हो गई थीं। पर मां की आग जैसे बुझी नहीं थी, दबा दी गई थी—वह अपने बच्चों को भी सुखी नहीं देखना चाहती थी। अपने जीवन के विष से वह हमारा जीवन भी विषाक्त करना चाहती थी।

"अरे, कोई है घर में ?" बाहर से स्वर आया। किसी ने आवाज़ को पर्याप्त न समझकर द्वार का कुंडा भी साथ ही खटकाया।

भाभी सम्भलकर बैठ गई। दुपट्टे से सिर अच्छी तरह ढंक लिया। बाहर से आने वाले ने आवाज़ और कुंडे को खटखटाकर जो संकेत किया था, भाभी वह भली भांति समझ गई थी।

"कौन आ गया ?" वह स्वर दबाकर बोली, "अलका, देख तो कौन आया है।"

अलका बिना कुछ कहे ही उठ गई। इस लड़की के चुप रहने ने उसके आसपास रहस्यमयता का एक घेरा डाल रखा है। वह अपने-आपको सबसे अलग दिखाना चाहती है। पर उसकी इस चुप्पी और रहस्यमयता में गरिमा कम और खोखलापन तथा दिखावा ही अधिक लगा मुझे।

अलका द्वार की ओर चली गई। मैं और भाभी दोनों उसके आने की प्रतीक्षा में, उत्सुकता से गर्दन उठाए द्वार की ओर देख रही थीं।

"जय देवां दी !"

"जय देवां दी !" अलका का स्वर आया।

"लो, देवी के भगत लोग आ गए !" भाभी बहुत धीरे से बोली, "यह अलका जहां जाती है बहुत सारे भगत इकट्ठे कर लेती है। किसी दिन कोई बड़ी जोत जगाएगी यह !"

"वह तो कहो, भगवान् ने रूप ऐसा दिया।" मैं बोली, "ज़रा-सी सुन्दर होती, तो और भी बहुत सारे घोर भगत चिपटे रहते।"

"चल ! मर परां !" भाभी ने एक धौल जमाई और उसके सूखे होंठों पर मुसकराहट झांक-सी गई।

मां भी सदा मुझे श्मशान ही भेजती है और भाभी भी 'मर परां' बहुत कहती है, पर भाभी के स्वर में स्नेह होता है—कितना अच्छा लगता

है उसके मुख से, जैसे आशीष दे रही हो और भाभी जब ज़रा-सा मुसकराती है तो कितनी अच्छी लगती है। पर भाभी आजकल अधिक मुसकराती नहीं।

भाभी जब पहले-पहल, नई-नई आयी थी तो बहुत मुसकराती थी। बड़ी रौनक थी उसके चेहरे पर। भाभी जब बातें करती, अपने मायके के विषय में बताती तो मैं बैठी-बैठी उसका मुख ताका करती थी। मुझे उसके मुख पर लायलपुर की धरती पर बिछे नहरों के जाल का ठंडापन नज़र आता था। उसमें गीलापन था, सूखी धरती की दरारें जो अन्य लोगों के चेहरे पर नज़र आती थीं, भाभी के पास नहीं फटकती थीं। उसके मुख पर हरी फसलों की ताज़गी और हवा के झूमते पौधों का सौन्दर्य था, सुखी पारिवारिक जीवन की सारी समृद्धियां भाभी के मुख पर एकत्रित थीं। कोई भी उन्हें देखकर यही सोचता कि वह उस परिवार से आयी थी, जहां गाएं रंभाती थीं, बछड़े दौड़-दौड़कर मांओं के पास आते थे। दूध दुहा जाता था, उसका दही जमाया जाता था, उसे मथकर मक्खन निकाला जाता था। उस परिवार की औरतें इकट्ठी मिलकर घर के काम करती होंगी और दही मथते हुए, धान कूटते हुए, या कपास की कलियां चुनते हुए मिलकर लोकगीतों के बोलों से जीवन को हरा-भरा बना देती होंगी। भाभी के मुख पर लोकधुनों का सौन्दर्य था, गेहूं की बालियों की चमक थी। उस पर एक निश्चितता थी, जो उसके आंगन में बैठे पुरुषों की याद दिलाती, जो दिन-भर कार्य कर थककर शाम को निश्चित आत्मविश्वास के साथ हुक्का गुड़गुड़ाते थे।

हमने अपने आसपास किसी को इतना निश्चित और मुसकराते हुए कभी नहीं देखा था, इसीलिए हम भाभी को 'सदाबहार' कहा करते थे। हमने तो औरतें देखी थीं, सदा चीखती-चिल्लातीं, एक-दूसरे को गालियां देतीं, सबकी अर्थी उठवातीं। गंदी-से-गंदी मर्दानी गालियां हमारी पड़ोसिनें एक-दूसरे को अकसर दे लेती थीं। झगड़ा होता तो न समय और न अवसर देखा जाता, न रिश्ता और सामाजिक मर्यादा। एक-दूसरे की बहू-बेटियों पर गंदे-से-गंदे लांछन लगाए जाते। भाई-बहनों, बाप-

बेटियों और देवर-भाभियों में अवैध संबंध स्थापित कराए जाते। हमारे आसपास की छोटी-छोटी लड़कियां भी सृष्टि के गुह्य भेदों को सविस्तार जानती थीं—सुन लेती थीं इन्हीं झगड़ों में। और छोटे-छोटे लड़के, इन्हीं झगड़ों में चुन-चुनकर भीषण गालियों का अपनी मांओं और भाई-बहनों के लिए प्रयोग करते थे। ये लड़ती-झगड़ती औरतें बस कपड़े नहीं उतारती थीं—शेष कुछ बाकी न बचता। पुरुष थे हमारे सदा भृकुटि ताने, मरने-मारने को तैयार, खीझें और जीवन से उकताए हुए! ये यम के दूत कब किसे छुरा मार देंगे, कहा नहीं जा सकता।

इस वातावरण ने शीघ्र ही भाभी की मुसकान भी छीन ली थी। मुसकान छिनने से पूर्व एक-एक कर भाभी के गहने छिने थे। फिर छिनी थी वह मुसकान! मुझे लगता है कि गहनों और मुसकान में दूर कहीं जाकर मूल में गहरा संबंध है, जैसे मुसकान न हो, गहनों की चमक हो।

इस वातावरण ने भाभी को सुखा अवश्य दिया था, पर फिर भी भाभी में अभी इस मुहल्ले और यहां के लोगों के गुण नहीं आए थे। पुराने गुण चाहे छिन गए हों, पर नए गुण सीखे नहीं थे उन्होंने। भाभी अभी भी लड़ती-झगड़ती नहीं थी, गालियां नहीं देती थी। उसकी जीभ गालियां सीख नहीं पायी थी। झगड़े की बात सुन भाभी चुप रह जाती थी। मुझे लगता था, भाभी जिन लोगों के बीच रहती है, उनसे बहुत ऊंची है, बहुत अच्छी है, सुसंस्कृत है। उसके भीतर कुछ है, जो इस गंदगी को अभी स्वीकार नहीं करता। इसीलिए वह चुप रहती थी। पर अन्य लोग इस चुप्पी को अच्छाई नहीं मानेंगे, वे उसे दुर्बलता मान लेंगे। भाभी को दुर्बल समझकर और सताएंगे। तब भाभी क्या करेगी? आज वह सहकर, चुप रहकर, दूसरों के दुःख-दर्द सुनती है पर क्या वह सदा ऐसा ही कर पाएगी!

भाभी इधर बहुत बड़ी लगने लगी थी। चार बच्चों की मां हो गयी थी इतनी जल्दी। भाभी चाहती नहीं थी, पर फिर भी बच्चे होते ही जाते थे। भाभी ही क्या, सारे मुहल्ले में इतने बच्चे पैदा होते हैं कि क्या कहूं। दिन-भर के काम से खीझे पुरुष, घर पर जीवन के लिए गलती नारियां—जब एक साथ हों तो क्या करें! लगता था इस ओर ध्यान देने का किसी के पास समय ही नहीं है। भाभी ने बताया था कि भैया कहते हैं, एक ही तो

चीज़ है जीवन में, जिससे मन ज़रा बहल जाता है और उसे भी तुम रोकती हो।

ये सारे बच्चे—हमारे आसपास गंदी नालियों में रेंगते-से कीड़े इसी वातावरण में पलेंगे, जिसमें रहकर भी भाभी ने अभी उसे स्वीकारा नहीं था। भाभी ने इसीलिए नहीं स्वीकारा था, या वह चाहते हुए भी अपना इसलिए नहीं पाती थी क्योंकि वह कहीं और पली थी जहां यह सब कुछ नहीं था। पर वे बच्चे जो इन्हीं झगड़ों में पलेंगे, ये सारी नंगी बातें सुनेंगे और इन खीझी औरतों और रुष्ट पुरुषों को चौबीसों घंटे अपने आसपास देखेंगे, कब तक रोक सकेंगे अपने-आपको! गंदी गली वाले आंगन में पले वे बच्चे बड़े होकर पुरुष और नारियां बनेंगे। पचासों मानसिक और शारीरिक बीमारियां पालेंगे और फिर उन बीमारियों का प्रसार करेंगे।

भाभी कहीं और पलकर आयी है, जहां जीवन इतना अनघड़ नहीं था। वहां कोमलता और सूक्ष्मता थी। अब इस स्थूलता के सामने भाभी स्वयं को दुर्बल पाती है। उसका मन स्वयं को, अपनी भावनाओं को, अपने शरीर को अपने आसपास के लोगों के ही समान नंगा करके देख नहीं पाता। उसकी सूक्ष्मता, इस अनघड़ स्थूल जीवन से आंखें नहीं मिला पाती। इस-लिए वह इन लोगों से बचती है, घबराती है और अन्त में हानि उठाती है। पर मैं सोचती हूं—आखिर भाभी कब तक ऐसी रहेगी। कुछ ही वर्षों में वह भी दूसरी औरतों के समान हो जाएगी। झगड़ेगी, गालियां देगी, दूसरों को नंगा करेगी और उनके साथ मिलकर स्वयं नंगी हो जाएगी। फिर इस स्थूलता से नहीं डरेगी, कठोरता से नहीं घबराएगी। दूसरी औरतों के समान अपने बच्चों को चिमटों से पीटेगी, उन्हें लूला-लंगड़ा, अंधा-काना बनाकर साधु-संत अथवा किसी ऐसी संस्था को भेंट कर देगी, जो उनसे भीख मंगवाकर, इस देश के धार्मिक नागरिकों को पुण्य कमाने का पूर्ण अवसर देंगे; और स्वयं भी अपने मन और शरीर में अनेक बीमारियों का घरौंदा बनाएगी।

लकड़ी की दीवार के उस पार से आशा की नन्ही बहन का फिर रुंधा हुआ बेबस-सा रोने का स्वर आया और उसकी मां की असमर्थ-सी गरज उसके साथ-साथ आयी, "चुप, कुत्तिये! हरामज़ादिए! रो-रोकर किस

खसम को पुकार रही है। अब रोयी तो गला घोंट दूंगी तेरा!"

"आओ जी!" अलका अपने दो भक्तों की अगवानी कर रही थी।

पल-भर में ही वह बहुत बदल गई थी। दरवाज़ा खोलने के लिए जाने वाली अलका, इस अलका से बहुत भिन्न थी। अब उसके मुख पर वह सहजता नहीं थी जो बुआ के घर आयी किसी भतीजी के मुख पर होती है। बेढंगी बनी हुई कलाहीन मूर्तियों, या फुटपाथ पर बिकने वाली सस्ती श्रृंगारिक देव-चित्रों की सस्ती चुप्पी उसके मुख पर थी, जिसमें न गरिमा थी, न गम्भीरता। मुहल्लों में होनेवाली रामलीलाओं में जिस प्रकार मुहल्ले के जनखे पनवाड़ी सीता का स्वांग भर और मुहल्ले के आवारा कबूतरबाज़ लड़के राम का वह रूप भर जैसे उनकी गरिमा को नष्ट करते हैं, वैसा ही कुछ कर रही थी यह अलका!

वे भक्त-जन आरोपित श्रद्धा के भार से नत, 'ही-ही' करते हुए चले आ रहे थे। मुझे ये भक्त एकदम अच्छे नहीं लगे। शक्ल से ही लफंगे लगते थे—नौटंकी के भांडों जैसे। मोटे-मोटे—जैसे आज तक जो कुछ खाया, सारा हराम का ही खाया हो। होंठों पर पान की पीक थी, जो होंठों के कोनों से बह-बह नीचे ठोड़ी तक आ जाने को तैयार थी। पीले गंदे दांतों पर पान का कत्थई रंग ऐसा घुल-मिल बैठा था कि दांतों का असली रंग खोजना असंभव हो गया था। होंठों पर बेढब फैली, नीचे झुकी हुई मूंछें। बेढंगे, लम्बे-लम्बे कटे हुए बालों में—जो बाल कम, ज़ुल्फें अधिक थीं—सरसों का कच्ची घानी का तेल इतना अधिक चुपड़ा हुआ, जैसे बूंद-बूंद कर अभी चू पड़ेगा। एक ने उन ज़ुल्फों पर मैली-कुचैली खादी की गांधी टोपी पहन रखी थी। दूसरे की काली गोल टोपी का ही रंग ऐसा था कि मैल की कितनी मोटी तह जम गई थी, कहा नहीं जा सकता। मैले-कुचैले गंदे कपड़ों से तेल-नमक-हींग की नहीं, चूहे की मेंगनियों की भी दुर्गन्ध आ रही थी।

"हमने सुना जी!" एक कह रहा था, "कि आप आए हुए हैं। सोचा, आपके दर्शन कर आएं।"

अलका बहुत गम्भीर बनी, चुपचाप खड़ी थी—पत्थर की मूर्ति-सी।

शायद वह जानती थी, चुप्पी से वह अपना महत्त्व बढ़ा सकती है। खीझ-सी चढ़ी मुझे, "आप आए हुए हैं।" ऊंह ! आपकी बच्ची !

"आपने वे चित्र देखे जी ?" दूसरा कह रहा था।

"कौन से ?" अलका ने बड़े प्रयत्न से यूं पलकें उठाईं, मानो बहुत भारी हों और उन्हें उठाने में विशेष कष्ट हो रहा हो उसे।

"देवी के दरबार के जी !" और भक्त उसके समीप खिसक आया, इतना कि एक-दूसरे के सांस भी अपने अस्तित्व का पता देने लगे। वह उसे चित्र दिखाने लगा। और मैंने देखा, उनकी अंगुलियों में एक खेल-सा चलने लगा। प्रत्येक चित्र पकड़ाते हुए भक्त की अंगुलियां देवी का स्पर्श-सुख प्राप्त करने लगीं और उस चित्र को वापस लेते हुए जैसे पहले के स्पर्श का धन्यवाद करती थीं।

मुझे इस बार क्रोध नहीं आया, तरस आया अलका पर। बेचारी कहां फंस गई है ! इन मैल के ढेरों से तो हज़ार गुना अच्छे लड़के बाहर सड़कों पर मारे फिरते हैं। इन गंदे मांस के ढेरों से खेल खेलना तो वेश्या भी पसन्द नहीं करेगी। पैसे इनके पास चाहे कितने ही हों। सुना था—भक्त कैसा ही हो, देवी उसे प्रसन्न करती है। इस महान् आध्यात्मिक सत्य को आज अपनी आंखों से देख रही थी।

मैंने देखा, भाभी बाहर बैठी मुसकरा रही थी। यह बात मुझे अच्छी लगती है। भाभी कुछ कहती नहीं, बस इसी तरह मुसकराती रहती है। पर उसकी यह मुसकान चुप नहीं रहती, बहुत कुछ कहती है। कोई किसी की नसों में विष घोल दे तो उसे इतना कष्ट न हो, जितना कष्ट यह मुसकान देती है।

मुसकाती भाभी शुरू से ही थी, पर तब उसकी मुसकान विष्णु की-सी वरदायिनी, प्रसन्नमुद्रा मुसकान थी, जो व्यक्ति के मन में आह्लाद को जन्म देती थी। अब अपनी उसी मुसकान को भाभी ने दूसरा रूप दिया था। उसी मुसकान से अपने आसपास का सारा वातावरण विषैला बना देती थी भाभी। लगता था जैसे एक श्रेष्ठ जीव अपने से हीन-निकृष्ट जीवों की मूर्खताओं पर घृणा तथा दया की मिश्रित दृष्टि डाल रहा हो।

"बात यह है जी !" मुझे लगा, भक्त दर्शन के लिए आने के मूल में

कार्य करते हुए प्रयोजन को कहने जा रहा है, "मेरा एक मित्र है जी ! वह अपने घर पर ही आपको मत्था टेकना चाहता है जी। उसकी बीवी के बच्चा नहीं होता जी।"

"मैं तो कल जा रही हूं।" अलका का स्वर भोंडा और खोखला था।

"कोई बात नहीं जी…"

मैं विरक्ति से उठ आयी। यदि देवी आती भी है अलका पर तो यह बेचारी क्या करेगी। ये मूर्ख इतना भी नहीं जानते कि बच्चा तो पुरुष पैदा कर सकता है, देवी नहीं। इनसे तो वे स्त्रियां ज़्यादा समझदार थीं, जो अपने क्लीब पतियों से निराश होकर गुरुओं-साधुओं, पीरों-फकीरों, समाधियों-दरगाहों में संतान मांगती थीं और वे पीर-फकीर ऊपरवाले के नाम पर अपनी संतान उनकी झोली में डाल देते थे।

पर अलका के ये घाघ भक्त इतना तो अवश्य ही जानते होंगे, इतने मूर्ख तो नहीं हैं वे। अलका भी जानती होगी यह। तो क्या उन्हीं पीरों-फकीरों के स्थान पर यह अलका भी संतान चाहने वाले भक्तों की इच्छा-पूर्ति करती है ! या फिर ये सब लोग मिलकर दूसरों को मूर्ख बनाते हैं…

अलका के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था मैंने। देवी ने उसे मना कर रखा था किसी भी प्रकार का चढ़ावा स्वीकार करने से। चढ़ावा नहीं लेती थी वह। कैसे ले सकती थी वह, देवी की आज्ञा के विरुद्ध ! पर जहां कहीं उसकी चौकियां होतीं, वह श्रद्धालु जनता चढ़ावा कैसे न चढ़ाती ! अलका उसे लेने से बड़ा-सा इनकार कर देती थी। पर भक्तों से, मत्था टेकने वालों से या चौकियां करने वालों से यात्रा के खर्च के लिए छोटी-सी गुप्त भेंट लेने में उसे कोई आपत्ति नहीं थी। आपत्ति हो भी कैसे सकती थी—देवी के भक्तों की इच्छापूर्ति के लिए उसे कहां-कहां जाना पड़ता था। देवी के नाम की भेंट देवी के भक्तों के लिए खर्च हो जाती थी और डेढ़ सौ रुपया मासिक लेने वाले अलका के पिता की मॉडल टाउन में कोठी मुफ्त में ही बनती जा रही थी…

"कहां चली, रानी !" भाभी पूछ रही थी, "ज़रा बात तो सुन !"

"चलूं, भाभी !" मैंने सामने की दीवार पर ऊपर उठती हुई धूप को देखकर कहा, "धूप ऊपर तक चली गई है। मां घर नहीं है। कुछ खाने-पीने

का ठिकाना…।"

भाभी ने भी एक उदास-सी दृष्टि उस धूप पर डाली, "हां, दिन तो ढल गया है।"

मैं खड़ी भाभी को देखती रही। भाभी के मुख पर से विषैली मुसकान लुप्त हो चुकी थी। क्षण-भर में ही भाभी एकदम बूढ़ी-सी लगने लगी थी। ढलती धूप के-से रंग के कमज़ोर पीले मुख पर असहायता बिखर आयी थी।

भाभी ने गहरा हौका[1] भरा, "हां, रानी ! दिन ढल गया है। खाने के लिए तो कुछ करना ही पड़ेगा।"

ऊपर आयी तो सारा कमरा धुआं-धुआं हो रहा था। ऊंह ! मां जाते समय क्या कर गई थी अंगीठी को। जान-बूझकर कुछ ऐसा कर गई होगी। कौन उसे ठीक करनी पड़ेगी ! मन में सोचकर गई होगी कि वह तो देर से आएगी, पीछे कोई-न-कोई ठीक कर ही लेगा। न कोई करेगा तो बुझ जाएगी। और भला था भी कौन ठीक करने वाला। अब मैं सारा समय उलझी रहूं अंगीठी से, नहीं तो बैठूं कैसे इस धुएं-भरे दम घोंटने वाले कमरे में !

मां की आंखों में सबसे ज़्यादा खटकती भी मैं रही हूं। उस दिन चाची के बैठे ही बरस पड़ी थी मुझ पर—"चुन्नी तो ले ले सिर पर सिर-मुन्निए !"

"मां ! वर्तन धो लूं। नहीं तो मैली हो जाती है।" मैंने मां को समझाने की कोशिश की थी।

"होती है तो हो जाने दे !" मां गरज उठी, "तू कौन-सा उसे अपने खसम की कमाई से खरीदकर लायी है। चुड़ैल यूं छातियां निकाले फिरती है जैसे और किसी पर जवानी चढ़ी है कभी भला। एक हम थे…"

"बहन !" चाची ने बीच में ही टोक दिया, "लड़की सयानी हो गई है। उसके सामने…"

---

1. ठंडी सांस

"सयानी हो गई है यही तो रोना है।" मां का क्रोध शीर्ष पर पहुंच-कर रुदन में परिवर्तित हो गया था, "हाथ में नया पैसा तक नहीं और यह रांड दिन पे दिन बढ़ी जाती है। कहती हूं, ढकके झुकके चल, लोगों की आंखों में खटके तो नहीं।"

और मेरा वक्ष मां की तेज़ आंखों से जलने-सा लगा। मैं वैसे ही उठ खड़ी हुई। राख-भरे गंदे हाथों से ही चुन्नी को फैलाकर स्वयं को ढांक-ओढ़ लिया।

"देख-देख ! खसम नु खानी !" मां चीख पड़ी, "अब यह नहीं हुआ कि हाथ धो ले। चुन्नी का सत्यानाश कर दिया। अब रगड़ ले चुन्नी से ही सारे बर्तन···!" मां चीखती रही।

मां अकसर इसी तरह चीखा करती है और इसका दोष मेरी जवानी को देती है, जिसके कारण उसके सिर पर मेरे विवाह की चिंता छा जाती है। मां सच कहती है कि मेरे विवाह के लिए पैसे नहीं हैं उसके पास। पैसे उसके पास तो क्या, किसी के पास भी नहीं हैं।

मैंने इधर-उधर देखा। पक्खी[1] कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। कहीं आसपास पड़ी होती तो इस धुएं के मारे दिखाई नहीं पड़ रही थी। किसी पुराने गोदाम के समान पुरानी चीज़ों से ठंसे इस कमरे में पक्खी खोजना वैसे ही सरल नहीं था, फिर यहां तो धुएं से खुली जलती हुई आंखें कुछ देख नहीं पा रही थीं।

मेरे हाथ में गत्ते का एक छोटा-सा टुकड़ा आ गया। वहीं फर्श पर पड़ा था। मैंने उसी से अंगीठी को हवा करनी शुरू कर दी। एक आधी गीली-सी लकड़ी थी, वह निकाल दी और अलकतरे वाला कोयला भी निकाल दिया। थोड़ी-सी देर में धुआं समाप्त हो गया। मां पहले ही अलकतरे वाला कोयला न डालती और लकड़ियां देखकर डालती तो इतनी मुसीबत न होती। पर यहां किसी दूसरे का ध्यान हो तब तो !

मेरी आंखें जल रही थीं। शायद उनमें कुछ पड़ भी गया था। मैंने ढूंढ़कर घर का एकमात्र चटखा हुआ शीशा निकाला। दाहिने हाथ से

1. हाथ वाला छोटा पंखा

पलक को उलटकर देखा, कुछ दिखा नहीं। आंखें लाल और सूजी हुई-सी हो रही थीं। मेरी आंखें अपनी ही शक्ल को घूर रही थीं। बाल, माथा, आंखें, नाक, गाल, होंठ, दांत, ठोड़ी और गर्दन। मैं अलका से कहीं अधिक सुन्दर हूं···मैंने शरमाकर शीशा दीवार पर लगी कील पर टांग दिया।

ध्यान इधर से हटा तो वह गत्ता याद आया, जिससे मैंने अभी थोड़ी देर पहले अंगीठी में हवा की थी। वह अभी तक वहीं अंगीठी के पास पड़ा हुआ था। उसे सहेजने के विचार से उठाया तो फर्श पर इधर-उधर बिखरी हुई किताबों की ओर भी ध्यान चला गया। मेरी ही किताबें थीं—किसी ने फेंक रखी थीं इधर-उधर। लगता था, जैसे कोई इनसे खेलता रहा हो। और कौन होगा—ये ही होंगी लता-वता! जी में आया, ढेर सारी गालियां दूं इनको पर उनको देने वाली गालियां ध्यान में नहीं आयीं। सोचा, अपनी ही इन नन्ही-मुन्नी बहनों को गालियां देने से क्या लाभ! खेलना तो है ही बेचारियों को। खिलौने न मिलें तो किताबों से ही खेलेंगी। मां के होते हुए तो उन्हें हाथ-पैर हिलाने में भी डर लगता है। माना कि मां की इच्छा बेटे पैदा करने की थी और उन्होंने लड़की रूप में जन्म लेकर उसको निराश किया है। पर मां की इच्छा कैसे पूरी हो सकती थी! उसका तो विचार है कि उसके जन्म के बाद किसी लड़की को इस संसार में आना ही नहीं चाहिए था···

···अब मां घर पर नहीं है तो ये खेलती रही होंगी। और कुछ भी नहीं मिला तो मेरी किताबों से ही खेलती रही होंगी।

सोचा, सब्ज़ी चढ़ाकर कुछ पढ़ ही लूं। परीक्षा अब अधिक दूर नहीं थी। मैट्रिक में तो दो बार फेल हो गई थी, अब कहीं आई० ए० में भी फेल न हो जाऊं। पर फेल न होऊं तो क्या करूं! दो घंटों के लिए तो मैं जाती हूं कॉलेज। नाम कॉलेज रख छोड़ा है और है क्या। निर्मला ठीक ही हमारे कॉलेज को 'भटियारखाना' कहती है। लकड़ी की दीवारों और टीन की छतों के नीचे कॉलेज लगता है हमारा। हमारे प्रोफेसर भी एक से एक हैं। मैं तो पहले जानती ही नहीं थी, निर्मला ने ही बताया था मुझे। उसका कहना है कि जिनकी एम० ए० में थर्ड क्लास आती है और उन्हें कहीं

नौकरी नहीं मिलती वे आ जाते हैं यहां। नौकरी का ध्यान कम और लड़कियों का आकर्षण अधिक होता है उन्हें। ठीक ही कहती है। सारे-के-सारे कैसे खुश होते हैं लड़कियों से घिरे खड़े होकर। एक वह कमीना है हमारा अंग्रेज़ी का प्रोफेसर। एक बार छुट्टी के बाद मिल गया मुझे। बातों में से बात निकालकर पूछने लगा, "आप शादी क्यों नहीं कर लेतीं?"

"जी, यूं ही···" मैंने उसे टालना चाहा।

"फिर भी?" उसने ज़िद की।

"जी, पहले पढ़ तो लूं।" मैंने झल्लाकर कहा।

"आप ठीक कहती हैं।" उसने बड़ी शालीनता से कहा, "पहले कैरियर, फिर शादी-वादी।" वह रुका, फिर धीरे से बोला, "आधुनिक साइकालोजी का यह कहना है कि सेक्स एक इन्सटिंक्ट है—ठीक है। पर इसका यह मतलब नहीं है कि इन्सटिंक्ट की पूर्ति के लिए कैरियर खराब कर लिया जाए। इन्सटिंक्ट की पूर्ति शादी के बिना भी तो हो···"

फुंक गई एकदम। पर क्या करती! पैदल ही चलती हुई घर चली आयी। पहले सोचा था कि घर आकर सब कुछ बता दूंगी। पर फिर व्यर्थ झगड़ा बढ़ेगा, सोचकर चुप हो गई।

पर यूं ही नहीं ये इतने बढ़-चढ़कर बातें करते। मैं ऐसी कितनी ही लड़कियों को जानती हूं जो कॉलेज के बाद, शाम को इनके घरों पर भी हाज़रियां दे आती हैं···

सुना है, सारे प्राइवेट कॉलेजों में यही हाल है। पर अच्छे कॉलेज में जाऊं कैसे! मैट्रिक में दो बार फेल होने वाले को कौन प्रवेश देगा वहां···!

मैंने आलू काटकर चूल्हे पर चढ़ा दिये और आटा गूंधने बैठ गई। सोच रही थी, मां ज़रा जल्दी आ जाती तो फुलके सेंक लेती और मैं तब तक ज़रा काम कर लेती अपना। पर क्यों लौटेगी मां जल्दी! उस बेचारी को भी तो कहीं बाहर आने-जाने का अवसर नहीं मिलता। तभी जाती है जब या तो कोई शादी हो या कोई मर गया हो। एक हमारी चाची है—जो कहीं जाती ही नहीं। उसका कहना है—हम तो मुसाफिर हैं। घर में ऐसे बैठे हुए हैं जैसे कोई रेल के डिब्बे में बैठता है कि ज़रा-सा ही हिले और सीट कोई और ले लेगा।

फुलके भी मैंने सेंक दिए। जब मुझे ही यह काम करना है, तो जितनी जल्दी हो निपटा दूं। छोटी बहनों को भी हांके लगा-लगाकर बुला लिया, वहीं बैठी-बैठी ने।

बेचारी बहुत डरी-सहमी-सी आयीं, "क्या है ?"

"बैठो ! रोटी खा लो !" मैंने उनकी ओर पीढ़ियां खिसका दीं।

कैसा उजाला छा गया था उनके मुख पर। मैं उनकी मन की दशा समझती हूं। उन्होंने कभी सोचा भी न होगा कि कोई उनको इसलिए बुला रहा है कि वे आकर रोटी खा लें। यहां तो जब कभी बच्चों का बड़ों से सामना होता है—उन्हें डांट पड़ती है, या मार। बुलाकर कभी यह नहीं कहा जाता कि रोटी खा लो, बहुधा डांटा जाता है कि वे समय पर रोटी खाने के लिए घर क्यों नहीं आए; और इस अपराध के लिए मार पड़ती है। रोटी तब भी नहीं मिलती ! बच्चे अकसर रात को रोते-रोते भूखे ही सोते हैं।

बच्चों को खिला-पिलाकर मैं स्वयं खाने बैठी ही थी कि नीचे मां का ज़ोर-ज़ोर से बोलने का स्वर सुनाई दिया। मां ही क्या, यहां तो सारे लोग ही इसी प्रकार चीख-चीखकर बातें करते हैं, जैसे पास बैठा हुआ सुनने वाला बहरा हो—या फिर जैसे सुनने वाला कोई एक व्यक्ति न हो—कोई सभा हो, जिसमें वे भाषण कर रहे हैं।

मेरा मन रोटी की ओर से उचट गया। भूख तो पहले भी कोई वैसी नहीं थी—बस ज़रा पढ़ाई का ही ध्यान था। अब पढ़ाई भी मन से फिसलती-सी लगी – ऐसी कौन-सी पढ़ाई की हानि हो जाएगी। या मैं ही कौन-सी बहुत पढ़ने वाली हूं। मां आयी है, तो बड़ी भाभी भी आयी होगी और मुन्ना ! चलूं, ज़रा मुन्ने को खिला आऊं। भाभी के जाने से पहले तो जी भरकर मुन्ने को गोद में ले भी न सकी थी।

जल्दी-जल्दी दो-चार कौर निगलकर मैं नीचे उतरी। सीढ़ियों में ही मां का गरजदार स्वर सुनाई दिया—"अरे, कौन करता-मरता है कुछ। ऊंट जैसी बेटी का भी कोई सुख नहीं। दिन-भर तो मरी रहती हूं चौके में। सवेरे का खतम करो, दोपहर हुई, दोपहर का खतम करो तो शाम का धंधा। वह तो सोचती ही नहीं कि इस कुतिया को भी ज़रा आराम चाहिए।

जी तरसकर रह गया है कि कोई कहे, 'मां ! तू भी इस चार अंगुल के कमरे से बाहर मर !'

एक बार तो मैं ठिठकी। ऐसे समय में मां के पास जाना उचित नहीं है। क्यों खामखाह उसे भी धर्म-संकट में डाला जाए। और मैं ही कौन अच्छी लगूंगी भाभियों के सामने उससे झगड़ते।

पर दूसरे ही क्षण एक उबाल-सा उठा। ऐसा कौन-सा मां का सम्मान है यहां। और वह कौन-सा मेरा ध्यान रखती है। अच्छा तो है कि जाऊं और खूब खरी-खोटी सुनाऊं उसे। इतनी सुनाऊं कि मां की आंखों से झर-झर आंसू बहें। वह रोए, चीख-चीखकर रोए। कितना अच्छा लगेगा मुझे तब !

फिर यह इच्छा हुई कि ऊपर लौट जाऊं। सारी रोटियां और सब्जी उठा लाऊं और दे मारूं मां के मुंह पर ! पूछूं—'यह सब कुछ तेरा भूत बना गया है !' यहां किसी के किए हुए काम को तो कोई स्वीकारना ही नहीं चाहता। सारा काम कर दो—तब भी बदनामी।

पर मैंने कुछ न किया। जैसे नीचे उतर रही थी, उतरती गई। आकर एक ओर खड़ी हो गई, जैसे मैंने कुछ सुना ही न हो। सुना भी हो, तो उससे कोई वास्ता ही न हो।

मुझे देखते ही मां उठ खड़ी हुई। उसे भी कुछ अटपटा-सा लगा होगा। पर वह अकड़ी ही रही, कुछ बोली नहीं।

बड़ी भाभी ने स्थिति को संभालना चाहा—"तू काम क्यों नहीं करती, मरी ! कभी कुछ पका-वका दिया कर !"

भाभी का स्वर बहुत मुलायम था। उसमें मेरे लिए डांट या भर्त्सना कुछ भी नहीं थी। और फिर भी वह मां की ओर से बोल रही थी—मां का मन रखने के लिए।

"हम पका भी आए, खा भी आए !" मैंने भाभी की बात के उत्तर में मां को सुनाया। स्वर में उदासीन, तटस्थ घोषणा का-सा भाव था, जैसे उससे मां की क्या प्रतिक्रिया होगी, उसकी कोई चिंता ही न हो। इस सारे वातावरण से अप्रभावित-सी मैं बड़ी भाभी की ओर बढ़ गई। उनकी गोद से मुन्ने को ले लिया और उछाल-उछालकर उसे खिलाने लगी।

मां झूठी पड़ गई थी—उसका आरोप एकदम निराधार निकला था। पर मां मेरे काम करने की प्रशंसा न कर सकी। उलटे मेरे प्रति उसका विरोध बढ़ा। मेरे ही कारण वह झूठी पड़ी थी। मैं यदि इस समय यहां न आती तो उसे इस प्रकार अपमानित होने का अनुभव न होता।

"आज नहीं थी न मैं।" मां का स्वर कुछ अधिक कठोर था, "अपने पेट में आग लगी होगी, तो पकाना-मरना तो था ही।"

मां धड़-धड़ करती, पैर पटकती ऊपर चली गई। किसी प्रकार तो उसे अपना बड़प्पन दर्शाना ही था।

"ऊंह !" मैंने मुंह चिढ़ाया। इस समय बहुत चिढ़ चढ़ रही थी मुझे, मां के प्रति। संभव होता तो उसका और अधिक अपमान करती।

मां के जाने के बाद सन्नाटा-सा छा गया था। ऐसे झगड़े हमारे यहां कोई महत्त्व नहीं रखते। यह सब तो होता रहता है। पर दोनों भाभियां रिश्ते में मां की बहुएं थीं। अतः मां का लिहाज़ करती थीं और एक प्रकार के औपचारिक सम्मान का पर्दा बीच में बनाए रखना चाहती थीं। उस पर्दे के हट जाने और वस्तुस्थिति के इस प्रकार, उनके न चाहते हुए, भी नग्न हो जाने के कारण यह सारा अटपटापन छा गया था वहां। सब चुप थे। ज़रा-सी आवाज़ भी शालीनता का अतिक्रमण थी। पर मैं ज़िद्द में मुन्ने को खिलाने के बहाने तरह-तरह की आवाज़ें करती जा रही थी। मुन्ना भी किलकारियां मार रहा था।

"तू सचमुच काम नहीं करती रानी ?" भाभी ने ज़रा स्वस्थ होकर पूछा।

"करती तो हूं भाभी !"

"चाची कहती है, तू हमेशा घूमती रहती है।"

"छोड़ो, भाभी !" मैं मुन्ने को खिलाती रही, "उससे तो उसका बाप भी सच नहीं बुलवा सकता।"

"चल, चुड़ैल ! कैसे बोलती है !" भाभी हंस पड़ी।

और अचानक वातावरण हल्का-सा हो गया। मां के कारण पैदा हुई घुटन घुल गई थी। किसी का विरोध या आतंक अब नहीं था। भाभियां चाहे मुझसे बड़ी हों—उम्र में भी और रिश्ते में भी। पर फिर भी हममें

एक खुलापन था—जो बराबरी का द्योतक था। मैं भाभी से खुले मन से बात कर सकती थी।

"भाभी! बात यह है कि," मैंने मुन्ना वापस कर दिया, "पढ़ना भी तो होता है—और वह चाहती है कि घर का सारा काम भी मैं करूं।" मुझे लगा कि बहुत कुछ है मेरे पास कहने को, "और सच तो यह है भाभी कि पढ़ाई और घर का काम दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। वैसे भी तुम जानती हो कि मैं पढ़ने में अधिक होशियार नहीं हूं। और जिस तरह से मां चाहती है यदि मैं वैसे चलूं तो कभी भी पास न होऊं! सारी बात तो यह है।"

"तो पढ़ना छोड़ दे।" भाभी बोली।

मैं समझ नहीं पायी कि भाभी उसी प्रकार हल्के मूड में मज़ाक कर रही है या सचमुच वह गम्भीरता से सलाह दे रही है कि मैं पढ़ाई छोड़ दूं। भाभी की नज़र में मैं वैसे भी काफी पढ़ चुकी हूं।

पर जाने क्यों मैं हल्की न हो सकी। बातें घनी होती गईं—"तुम नहीं समझतीं भाभी!" मुझे रुलाई-सी आने लगी, "न पढ़ूं तो काम कैसे चले। कोई एक आफत है मेरी जान पर। रमेश कहता है, 'पढ़ और नौकरी कर। तुम्हें घर की हालत का भी तो पता नहीं है।' और साथ ही कहता है, 'कुछ पढ़-लिख जाएगी तो कहीं शादी भी ढंग से हो जाएगी।'"

"तो तू शादी के लिए पढ़ रही है?" भाभी ने चुहल की। वह अब बहुत हल्के स्तर से बोल रही थी।

पर मैं न लजाई, न लाल पड़ी। इन बातों में रस कहां रह गया था कि कोई लजाए-शरमाए। यह तो जीवन का यथार्थ है! शादी के बिना कोई नहीं रह सकता और न ही घरवाले मुझे चिरकुमारी रखने को तैयार हैं। अभी से मैं उनके लिए बोझ हो गई हूं। तो क्यों न स्वीकार कर लिया जाए कि शादी के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए—करना पड़ता है। फिर लजाया किस बात से जाए!

"और, वैसे भी भाभी!" मैं बोली, "घर में रोज़ इतनी मार-धाड़ होती है कि पता नहीं मैं कब घर छोड़ दूं। पढ़ लूंगी तो अपना पेट भरने के लिए अपनी विद्या का व्यापार कर लूंगी—शरीर का व्यापार करने से तो

बच जाऊंगी न !"

"क्या कहती है री !" भाभी को मैंने उस हल्केपन से सहसा गंभीर धरातल पर घसीट लिया था। भाभी के लिए यह कोई सुखद बात नहीं थी। भाभी ने मुझसे इन सब बातों की अपेक्षा कभी न की होगी। उसने मुझे कभी इतनी गंभीरता से स्वीकार ही न किया होगा। फिर मैं भाभी की ननद थी। शरीर के व्यापार की बात मैं कैसे कर गई उससे !

"हां, भाभी !" मैं कुछ कह न सकी। मेरी आंखें भीगने लगी थीं। मैं उठकर बाहर चली आयी।

अजीब हैं मेरे आंसू भी। एक बार आंखों में आ जाएं सही, फिर रुकते ही नहीं। बहते ही चले जाएंगे। अब इस समय कहां जाऊं ? अच्छा होता भाभी के पास ही बैठी रहती ! रो ही पड़ती तो क्या होता ? भाभी के सामने रोना कोई इतना बुरा नहीं था। अब घर से बाहर निकल आयी हूं—यहां आंसू न रुके तो ? आता-जाता कोई जाना-अनजाना रोते हुए देखेगा तो क्या कहेगा !

घर से तो निकल ही आयी थी। दूर कहीं नहीं जा सकती थी। गली के मोड़ पर ही निर्मला का घर है। और कोई रास्ता ही नहीं था। वैसे भी निर्मला की बातों में मन बहल जाएगा।

मैं जब पहुंची तो निर्मला दीवार पर लगे शीशे में आड़ी-तिरछी हो-होकर अपने को देखती हुई कंघी कर रही थी।

"आओ, आओ।" उसने शीशे में देखते हुए मेरा स्वागत किया।

"कहीं जा रही हो क्या ?" मैं बुझ-सी गई। इसे कहीं जाना हुआ तो मैं यहां भी न छिप सकूंगी।

"नहीं तो ! क्यों ?" उसने इतने आश्चर्य से पूछा, जैसे मैंने कोई बहुत ही विचित्र-सी बात पूछ ली हो।

"कंघी क्यों कर रही हो तब ?"

"कंघी !" वह अचानक हंस पड़ी, "किसी को फंसाने के लिए !"

इसे जब देखो, बनाव-सिंगार में लगी रहती है। हंसती रहती है और ऐसी ही ऊल-जलूल बातें करती रहती है। हम जिन बातों को मन में कभी-

कभार आ जाने पर भी छिपाते फिरते हैं---यह उन्हीं बातों को उघाड़-उघाड़कर कहती फिरती है। उन्हें कहने के अवसर ढूंढ़ती रहती है।

जितने बंधनों में हमारे घरवाले हमें बांधना चाहते हैं, उतने बंधनों में कोई जी नहीं सकता। इनमें या तो व्यक्ति मेरी तरह घुटता-घुटता मर जाएगा, या फिर निर्मला की तरह बेशरम हो जाएगा।

पर कितना अंतर है। शालीन बने रहने के प्रयत्न में घुटते रहने पर भी मुझे कितनी डांट सहनी पड़ती है, कभी-कभी मार भी। और निर्मला को अपनी बेशरमी का कितना सुख है। किसी को उसे कुछ कहने का साहस नहीं है।

"किसी को क्यों फंसाना चाहती हो तुम ?" मैंने पूछा।

मुझे निर्मला की इन बातों में कोई रुचि नहीं थी। न मैं सचमुच जानना ही चाहती थी कि वह ऐसा क्यों करती है। पर, जब उसके पास आयी थी, तो कुछ बातें तो करनी ही थीं। निर्मला से इसी प्रकार की बातें हो सकती हैं। और किसी प्रकार की बातों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी उसके साथ।

"मैं ही क्या···" वह बाल एक ओर झटककर बड़ी लापरवाही से बोली, "सारी लड़कियां करती हैं। सब चाहती हैं। वे नहीं चाहतीं तो उनके मां-बाप चाहते हैं।"

"चल, बेशरम !" मैं बोली।

"मजाक समझती है ?" इस बार उसका स्वर हल्का नहीं था, "अच्छा बता—तेरी मां क्यों चाहती है कि तू घर का सारा काम सीख जाए ? तू क्यों चाहती है—तेरा भाई क्यों चाहता है कि तू बी० ए०, एम० ए० कर जाए ?"

"इसलिए कि···"

"इसलिए-विसलिए कुछ नहीं।" उसने मुझे कहने नहीं दिया, "बात सिर्फ एक है। सब चाहते हैं कि अपने इन गुणों से तू किसी लड़के को फंसा ले, फंसा सके, ताकि सारी उम्र वह तेरा बोझ उठाए। तेरे घरवाले अब तेरा बोझ नहीं उठा सकते।"

"तेरा तो दिमाग खराब है !" मैं उत्तेजित हो उठी थी। उसकी बात

से मैं बहुत ज़्यादा असहमत तो नहीं थी, पर अपने घरवालों पर ऐसे खुले आरोप नहीं सह सकती थी।

"इसे तू किसी लड़के को फंसाने के लिए कहती है !" मैं बोली, "यह सब तो शादी के लिए होता है।"

"हां, मेम साहब ! शादी के लिए होता है।" वह भी उतनी ही तल्खी से बोली, "फंसाना तो फंसाना ही है। उसके बाद चाहे शादी कर लो, चाहे न करो।"

"अच्छा-अच्छा, लड़ मत !" मैं जाने क्यों हंस पड़ी, "मैं तो तुझसे मिलने आयी हूं—लड़ने नहीं आयी !"

मुझे याद है, पिछले साल जब किसी काम के सिलसिले में विराट दिल्ली आकर हमारे घर ठहरा था तो मेरी मां ने भी यही चाहा था।

विराट मेरी मौसी के देवर का लड़का है। ऊंचा-लम्बा खूबसूरत जवान। एम० ए० पास और किसी अच्छे पद पर लगा हुआ सरकारी अफसर ! मुझे स्वयं बड़ा अच्छा लगा था विराट। पर मैं यह भी जानती थी कि मैं किसी भी रूप में उसके योग्य नहीं हूं। हमारा परिवार किसी भी प्रकार उनके परिवार की समता नहीं कर सकता। उसे शायद हमारे घर की स्थिति का पता नहीं था, नहीं तो ठहरने के लिए हमारे घर कभी न आता। अब जब आ गया था तो क्या करता। उसने अपनी नापसंद की कोई बात नहीं कही, जबकि हमारे घर में कोई ऐसी कुर्सी भी न थी, जिस पर बैठकर उसके कपड़े गंदे न होते।

पर उन दो-तीन दिनों में मां बहुत बदली हुई थी। कितनी बार वे मुझे विराट के साथ कमरे में अकेली छोड़ गईं। वे चाहती थीं कि मैं विराट के कपड़े धोऊं, उसके बटन टांकूं। उसके नहाने के लिए कपड़े टांगूं। उसके खाने का खयाल रखूं। और···और मां ने चाहा था कि मैं किसी बहाने से आधे कपड़ों में उसके पास जाकर उसे उत्तेजित करूं···पर विराट हाथ नहीं आया था। मैं स्वयं चाहती थी कि वह इस प्रकार धोखा न खाए !

मन हुआ, निर्मला के पास बैठी रहूं। उसकी बातें सुनूं। उनका समर्थन करूं। अपनी ओर से उनको पुष्ट करूं। पर मैं अधिक देर नहीं बैठी। डर

था, मां को पता चल गया तो डांट पड़ेगी। और आज तो मां पहले ही काफी नाराज़ हो चुकी है। उसे और उकसाना उचित नहीं है।

आंसू ज़रा से सूखे तो मैं निर्मला के पास से उठ आयी। सीधे घर जाने का मन न हुआ। घर जाकर क्या करूंगी ? वहां मां बैठी होगी। फिर वही चिख-चिख शुरू हो जाएगी। इससे अच्छा है, घर से गायब ही रहूं! मैं घूम-फिरकर फिर छोटी भाभी के पास आ बैठी।

गोपाल भैया भी आ गए थे काम से। आंखें बन्द किए, चारपाई पर पड़े सुस्ता रहे थे। वे सदा अंधेरा हो जाने के बाद ही घर आते थे। आते तो इसी प्रकार बड़ी देर तक आंखें बन्द किए पड़े रहते।

"आ गई रानी!" मेरे बैठते ही भाभी बोली। लगा, वह मेरी प्रतीक्षा ही कर रही थी—"अभी चाचाजी तुम्हें पूछकर गए हैं। जल्दी से चली जा ऊपर।"

"चली जाऊंगी।" मैं उदासीन-सी बोली।

"चली जाओ रानी।" भाभी ने मनाया, "नहीं तो चाची मुझे भी गालियां देगी।"

"अभी कौन-सा बच जाओगी, या मैं बच जाऊंगी।" इस बार मैं सचमुच ही रो पड़ी, "जाते ही सेवा होगी मेरी अभी। जितनी देर न जाऊं, उतनी देर ही बची हुई हूं।"

"अरे, पागल लड़की! रोती है!" बड़ी भाभी उठकर मेरे पास आ गई। उसने मुझे अपनी बांहों में सहेजकर चारपाई पर बिठा लिया, "कोई इस तरह भी घरवालों से नाराज़ होता है भला ? क्या हुआ, दो-चार बातें कहेगी, सुन लेना। मां की डांट का कोई बुरा मानता है ?"

"वह मां है···" जी में आया, कोई बहुत बुरा-सा नाम दूं उसे, "डांट कहती हो भाभी!" और मैंने कमीज़ की आस्तीन उठाकर उसे अपनी बांह दिखाई।

"यह क्या है रानी! नील ?"

बड़ी भाभी ने हाथ लगाया और मैं 'सी' कर उठी।

"चिमटे से मार पड़ी थी इसे!" छोटी भाभी ने बताया। उसकी आवाज़ बहुत धीमी थी, जैसे डर रही हो—कहीं ऊपर, मां तक उसकी

आवाज़ न जा पहुंचे।

"रे, कैसे हैं ये लोग!" बड़ी भाभी ने ऐसे कहा, जैसे वह इन लोगों से परिचित न रही हो। वैसे भी उसे अलग हुए काफी दिन हो गए थे, शायद भूल भी गई हो। ऐसी बातों को तो आदमी जितनी जल्दी भूल जाए, उतना ही अच्छा।

"चल तू मेरे साथ!" बड़ी भाभी ने मेरी बांह पकड़ ली, "दो-चार दिन वहां भी रह आ। मन संभल जाएगा—कौड़ापन धुल जाएगा।"

"इसे छुट्टी कौन देगा!" गोपाल भैया बोले। और सहसा किसी उत्तेजना में वे उठकर बैठ गए, "भाभी! किसे-किसे बचाओगी! यहां तो यही सब होता रहता है।"

लगा, भाभी का उत्साह भी मन्द पड़ गया है। हो सकता है, वह भी यही सोच रही हो, किसे-किसे बचाएगी वह! उसके अपने सामर्थ्य की भी सीमाएं हैं।

मैं कुछ न बोली। बस, सुबकती रही बैठी हुई। मेरे पास ही गोपाल भैया और छोटी भाभी भी बैठे हुए थे। पर कोई कुछ नहीं बोल रहा था, जैसे सब असहाय हों।

"चल! मैं तुझे छोड़कर आती हूं ऊपर!" बड़ी भाभी सहसा फिर साहस बटोरकर उठीं। उन्होंने मेरी बांह पकड़ मुझे भी उठाया, "मेरे सामने तो कोई तुझे कुछ न कहेगा।"

"हां! छोड़ आओ तुम!" छोटी भाभी उसी प्रकार, बहुत धीमे-से डरे हुए स्वर में बोली, "नहीं तो कौन जाने, मारें ही। अभी, उस दिन इसे मार पड़ी थी तो सारे मुहल्ले ने सुना था। सब मुझसे पूछ रही थीं।"

भाभी मुझे मार से बचाने के लिए, फिर उसी पर्दे का सहारा लेना चाहती थीं, जिसके हट जाने के कारण सवेरे मां नाराज़ हुई थी। मुझे लगा, यह बात कम जोखिम की नहीं है। पर किसी भी प्रकार···कोई तो सहारा चाहिए ही था। यदि भाभी बचा सके तो···

"मारती है। सारा मुहल्ला सुनता है। गली भर में बेइज़्ज़ती करवाती है···" मैं जाने क्या-क्या कहती जा रही थी।

बड़ी भाभी मुझे ऊपर ले चली और मैं सुबकती, आंसू पोंछती,

घिसटती हुई-सी चली गई। मैं कब और कैसे सीढ़ियां चढ़ी, मुझे कुछ पता नहीं लगा। मैं तो चली जा रही थी। मां के भय से मन जाने कैसे इतना आक्रांत हो गया था कि चेतनाशून्य-सी हो गयी थी।

दरवाज़े के अन्दर हुई तो मां सामने ही थी, "लो, आ गई तुम्हारी लाड़ली! गली-गली कुत्तों-सी मारी फिरती है।"

मां पहले से नोच खाने को तैयार बैठी थी। उसने या तो मेरे आंसुओं को देखा ही नहीं था, या देखकर भी तरस नहीं आया था उसे।

भाभी बाहर अंधेरे में ही रुक गई थी। उसने हमारे आपसी झमेले में पड़ना शायद उचित न समझा हो, या बाबूजी के संकोच से रुक गई हो, या हो सकता है, उनके साहस ने ही जवाब दे दिया हो···अपनी असहायता से ही मैं बल ग्रहण कर रही थी···अपने बचाव के लिए स्वयं ही तैयार होना था मुझे।

"कहां गई थी तू ?" बाबूजी को शायद काफी उकसाया गया था।

"···" मैं कुछ न बोली। ऐसी स्थिति में क्या बोलूं, कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

"होगी कहां ? गई होगी उसी कलमुंही निर्मला के पास! खसम-खानी!" मां ने टुकड़ा दिया।

"मैं तो नीचे थी—छोटी भाभी के पास।" मैं फटी-सी आवाज़ में औचक ही बोली। मेरा अपना स्वर मेरे लिए अनजाना हो रहा था।

"नीचे मैं देखकर आया था, तू नहीं थी नीचे।" बाबूजी के विवशता में फड़कने वाले नथुने इस समय क्रोध में फड़क रहे थे, "हमारी इज़्ज़त मिट्टी में मिलाने पर तुली हुई है।"

जी में आया, बाबूजी को उनकी इज़्ज़त के विषय में कुछ बताऊं, पर निश्चय के अभाव में चुप ही रही।

"नीचे ही थी, चाचाजी!" बड़ी भाभी शालीनतापूर्वक ससुर का सम्मान करते हुए, बहुत संकोच से बोली। वह आकर मेरे पास खड़ी हो गई थी।

बड़ी भाभी के बीच में आ जाने से बाबूजी ज़रा-सा अचकचाए, पर

सहसा सब कुछ उनके क्रोध में डूब गया, "जब मैं गया था, तब कहां थी ?"

"…" बड़ी भाभी चुप रहीं। प्रश्न उनसे किया भी नहीं गया था।

"जरा-सा एक सहेली को चिट्ठी डालने गई थी।" मुझे और कोई उपयुक्त बहाना न सूझा, "फिर आ गई थी।"

"अब चिट्ठी-पत्री तक आ गई है, बदजात !" और बाबूजी के चांटे से मेरी कनपटी झनझना गई।

"बाबू…!" मैं चीखी और बड़ी भाभी ने मुझे फिर अपनी बांहों में संभाल लिया।

वह मुझे घसीटती हुई उसी प्रकार फिर नीचे लिए जा रही थी, जैसे ऊपर लायी थी। मैं जड़-सी हो चुकी थी। जाने भाभी क्या सोच रही थी।

'कैसे हैं ये लोग ! कैसे हैं !!" भाभी बार-बार अनजाने ही बड़बड़ाती जा रही थी।

मैं सुबक रही थी, भाभी बड़बड़ा रही थी। हम दोनों एक-दूसरे का सहारा लिए, एक-दूसरे को ठेलती-ठालती नीचे फिसलती जा रही थीं।

नेपथ्य में बहुत सारा शोर था। बाबूजी अब शायद मां को डांट रहे थे। उनका क्रोध कहीं तो उतरना ही था। मां का रोता हुआ बेढंगा-सा स्वर हवा में तैरकर उसे और गंदा कर रहा था।

उधर आशा की मां चीख रही थी, "कहां मर गए हैं सारे ! अरी हरामजादियो, कुत्तियो…!"

और मेरा मन रोते-रोते निर्मला की बात सोच रहा था। निर्मला अच्छी है। उसका ढंग अच्छा है। मैं मिलूंगी उससे, और मिलूंगी। उसके साथ घूमूंगी। उसी के जैसे कपड़े पहनूंगी—वैसे ही फंसे-फंसे एकदम—जिनमें जोड़-जोड़ झलकता है और अंग-अंग थिरकता है। हां, जरूर पहनूंगी…चाहे कुछ हो जाए…

पद-प्रतिष्ठा

डा० मेहता के मन में उथल-पुथल की सार्वजनिक सभा ही हो रही थी।

उन्हें लगता था, कैंटीन के तंबू में लगी आग का अंश उन्हें भी कहीं-न-कहीं से छू गया है। उनके भीतर भी कुछ जल गया है। जला शायद नहीं है, क्योंकि वहां जलने को कुछ नहीं था। उनके भीतर की धातु जल नहीं सकती थी, वह तो मात्र पिघलाई जा सकती थी। शायद वह सबकुछ इस आग ने पिघला दिया था। और पिघलने के बाद वह धातु उनके भीतर स्थिर भी नहीं रह पाई थी। पिघलने के साथ ही बहने लगी थी। वे जितना ही अधिक सोचते थे, उतनी ही उनके मन की धातु पिघलकर बहती जाती थी! उनका वक्ष खोखला हो रहा था, खाली और शून्य···

उन्होंने एम० ए० की डिग्री पांच वर्ष पूर्व ली थी और उसके तुरंत पश्चात् ही तीन वर्ष लगाकर पी-एच० डी० भी कर डाली थी और अब पिछले दो वर्षों से पढ़ा रहे थे। पर अध्यापन के इन दो वर्षों के दौरान उन्होंने बार-बार अपने को टटोलकर यही पाया था कि जितने वर्ष उन्होंने अपने अध्ययन में लगाए हैं, उस सारी अवधि में वस्तुतः वे अपने भीतर आदर्शों, मान्यताओं, कल्पनाओं और विचारों को जमाते रहे हैं। ज्ञान तो बाद की चीज है, वह तो रटने और याद करने की चीज़ थी। वह भी किया है उन्होंने, पर उससे अधिक उन्होंने अपने आदर्शों को गढ़ा है···

उनके भीतर आदर्शों की जो मूर्ति थी, उस पर कितनी ही बार, अपने अध्यापन के दो वर्षों में उन्होंने आघात सहे थे। कितनी बार उस पर कंकड़-पत्थर फेंके गए थे। मूर्ति को चोट लगी थी। कहीं खरोंच लगी थी, कहीं से वह मूर्ति दब गई थी, पिचक गई थी। पर वह टूटी नहीं थी, भुरभुराई नहीं थी। वह धातु की बनी थी, इन छोटे-मोटे कंकड़-पत्थरों से उसे ऐसा क्या हो जाता। किंतु आज की आग···आज की आग ने उस मूर्ति को

पिघला-गलाकर बहा दिया था···उनका अपना विद्यार्थी जीवन कोई बहुत दूर—अतीत की बात नहीं है। कुल पांच वर्ष बीते हैं एम० ए० किए हुए। पर कितना अंतर आ गया है इस अंतराल में···

पीरियड समाप्त होने पर, अगले अध्यापक के आने तक के लिए वे लोग क्लास से बाहर निकल बरामदे में खड़े होकर खूब शोर मचाया करते थे। दो पीरियड्स के बीच का अंतराल ही ऐसा समय था, जब सारी क्लास फ्री होती थी और वे लोग एक-दूसरे से मिल सकते थे, बातचीत कर सकते थे। लड़कियां इस अवकाश के लिए कुछ अधिक अधीर होती थीं, पर लड़के भी काफी गंभीरता से इसकी प्रतीक्षा करते थे। पर तभी कोई-न-कोई अध्यापक उधर से गुज़र जाते थे और सारी क्लास काई की तरह फट जाती थी। कहीं कोई आवाज़ नहीं। उस भगदड़ में जो बेचारे कमरे में नहीं घुस पाते थे, वे लोग दीवार में धंस जाने का-सा भाव दिखाते हुए दीवार से चिपक जाते थे।

वे आज भी अपने पुराने अध्यापकों को देखते हैं तो उनके सम्मान में उठकर खड़े हो जाते हैं और बातचीत अधूरी छोड़ मौन हो जाते हैं।

पर अपने अध्यापन-काल में उन्होंने यह सब नहीं पाया था। पांच वर्षों में जैसे युग बदल गया था। अध्यापक को आते देख काई की तरह कोई नहीं फटता था। क्लास छूटने पर बरामदों में मीना बाज़ार लग जाता था। उन्हें बहुधा धक्कमपेल में से अपना रास्ता बनाना पड़ता था। बरामदे की मुंडेरों पर बैठे लड़के-लड़कियों के झुंड अध्यापक को देखकर खड़े नहीं होते थे। या तो वे उपेक्षा से मुंह फेर लेते थे, या हंसकर 'गुड मॉर्निंग' कर देते थे।

आरंभ में उन्हें इन बातों से बड़ी तकलीफ हुई थी, पर उन्होंने स्वयं को समझाकर नए तरीकों के साथ स्वयं को एडजस्ट कर लिया था। उनके बचपन में घर के बड़े-बूढ़े चाय को बड़ी बुरी निगाह से देखते थे, आज बुरा तो कोई क्या माने, उसे सत्कार की वस्तु मान लिया गया है। उनसे एक पीढ़ी पहले के लोग आज भी फिल्मों और उपन्यासों को ऐब में गिनते हैं—और वे स्वयं पढ़ाते हुए, अपनी बात स्पष्ट करने के लिए, उपन्यासों और फिल्मों के उदाहरण देते हैं। कितनी बार कोई अच्छा उपन्यास न पढ़ने, या अच्छी फिल्म न देखने पर, उन्होंने विद्यार्थियों को डांटा है—बैकवर्ड कहीं

के ! आलसी !

लोगों में पहले से कहीं अधिक आधुनिकता है, उदारता है। आधुनिकता और है ही क्या—समय की आवश्यकता को देखते हुए, पुरानी रूढ़ियों को छोड़ उदार होना ही तो आधुनिक होना है। वे अपनी पिछली पीढ़ी से अधिक उदार हुए हैं—वे चाय, उपन्यास, फिल्म इत्यादि को बुरी बात नहीं मानते; कोई भी नहीं मानता। कौन जानता है कि कुछ वर्षों में लोग और अधिक उदार नहीं हो जाएंगे और तब अध्यापक और छात्र में सिगरेट का भी चाय के समान ही आदान-प्रदान नहीं होने लगेगा···

यह सब ठीक है। समय बदल गया है। पर लड़कों की आंखों की लाज-शरम ?···

आज सवेरे से ही कॉलेज में तनातनी थी। एक भी लड़का कॉलेज-गेट के भीतर नहीं आया था। पर घर से तो सब ही आए थे। जो-जो आता जाता था, आकर गेट पर ही रुकता जाता था। गेट पर हर क्षण भीड़ बढ़ रही थी। भीड़ के साथ उग्रता अपने-आप ही जुड़ जाती है। भीड़ भीरु-से-भीरु व्यक्ति का रक्त भी उफना देती है और ये लड़के तो इतने भीरु भी नहीं थे। हर क्षण स्थिति गंभीर होती जा रही थी···और प्रिंसिपल साहब अभी तक नहीं आए थे।

डा० मेहता जानते थे कि ऐसी परिस्थितियों से सुलझने का यह प्रिंसिपल का अपना मौलिक ढंग है। जब कभी भी उन्हें कॉलेज में किसी गड़बड़ी की सूचना मिलती, वे और भी देर से आते। कॉलेज में जो कोई उपस्थित होगा, वह स्वयं निबटेगा। होता भी यही, कोई-न-कोई अध्यापक बाहर गेट पर चला जाता। लड़कों से बातचीत करता। उनकी बात सुनता, हंसता, उनसे प्यार जताता, दो-चार चुटकुले सुनाता और बहला-फुसलाकर उन्हें भीतर ले आता। लड़के हो-हो करते, शोर मचाते हुए, उस अध्यापक की प्रशंसा में रिमार्क कसते हुए गेट के भीतर आ जाते। और गेट के भीतर आने का अर्थ था—कॉलेज के अनुशासन को मानना। अपने अध्यापकों की अथॉरिटी को स्वीकार करना।

और जब तक प्रिंसिपल आते, तब तक कॉलेज की स्थिति सर्वथा सामान्य हो चुकी होती।

किंतु, इस बार वैसा कुछ भी नहीं हो पाया था। लड़कों ने सवेरे ही पत्थर मारकर कॉलेज-बिल्डिंग के तीन-चार शीशे तोड़कर अपने बदले हुए तेवरों का परिचय दे दिया था। वे लोग लगातार अपनी एकता के जिंदाबादी और प्रिंसिपल के मुर्दाबादी नारे लगाते जा रहे थे।

प्रिंसिपल के विषय में मुर्दाबाद के नारे! डा० मेहता इस आकस्मिक झटके से जैसे जड़ हो गए थे। स्थिति यहां तक पहुंच गई है! जिस कॉलेज में ये लड़के पढ़ रहे हैं—जहां इन्हें अभी पढ़ना है, उस कॉलेज के प्रिंसिपल के विषय में मुर्दाबाद के नारे! ऐसी निर्भीकता या उच्छृंखलता! क्या हो गया है इन लड़कों को?

शायद यही कारण था कि डा० मेहता ने पाया था कि आज किसी भी अध्यापक की आंखों में वह परिहास की रेखा नहीं थी, जो सामान्यतः ऐसे अवसरों पर हुआ करती थी। एक अजाना-सा भय उनके चेहरों पर उठती-गिरती लहरों के समान धूप में चमक जाता था।

काफी सारी प्रतीक्षा के बाद जब कोई भी बाहर नहीं गया तो डा० मेहता स्वयं ही चले आए थे। आखिर अपने ही बच्चों से डरने का क्या कारण था! वे लोग उनके शत्रु नहीं थे। न उनमें से किसी से उनका कोई वैर-वैमनस्य था। वे उनसे पढ़ते थे, अपने ढंग से उनका सम्मान भी करते थे। यह ठीक है कि डा० मेहता को वह खुला सम्मान कभी नहीं मिला था, जिसके वे आकांक्षी थे—पर उनका अपमान भी किसी ने नहीं किया था। उनका कोई विद्यार्थी उनका अपमान कैसे कर सकता है?

उनको बाहर, गेट की ओर आते देखकर लड़कों की चीख-पुकार और भी बढ़ गई थी। पर उस कोलाहल में न क्रोध था, न आक्रोश। उसमें एक प्रकार का उल्लास था। वे उनके सामने जाकर खड़े हो गए। लड़के अपनी उत्तेजना में भी चुप हो गए।

"यह सब किस खुशी में भई?" डा० मेहता मुस्कराए।

"आपसे हमारा कोई विरोध नहीं है सर!" जगमोहन बोला, "किसी लैक्चरर से हमारा कोई विरोध नहीं है सर! पर इस बार हम प्रिंसिपल को नहीं छोड़ेंगे।"

और उसने ज़ोर का नारा लगाया, "डा० मेहता—"

"ज़िंदाबाद !" लड़कों ने प्रतिध्वनि दी।

"टींडा बाबू !" जगमोहन फिर चिल्लाया।

"मुर्दाबाद !" लड़कों ने कहा।

"नहीं भई, नहीं !"

डा० मेहता चुपचाप लौट आए। यह स्थिति भयंकर थी। यदि प्रिंसिपल को यह सूचना मिल जाए कि उनके विषय में मुर्दाबाद और डा० मेहता के लिए ज़िंदाबाद के नारे लगाए गए हैं तो निश्चित रूप से समझा जाएगा कि वे लड़कों का पक्ष लेकर प्रिंसिपल का विरोध कर रहे हैं। और यह स्थिति उनके लिए ठीक नहीं थी।

जब तक प्रिंसिपल आए थे, तब तक किसी ने भी कुछ नहीं किया था और स्थिति काफी बिगड़ गई थी। उन्हें गेट के भीतर आने दिया गया था और फिर बेपनाह शोर मच गया था। फिर भीतर स्टाफ की मीटिंग हो रही थी और बाहर लड़के अमर्यादित होकर नारे लगा रहे थे।

प्रिंसिपल साहब ने स्टाफ को बताया कि कल उन्हें स्टूडेंट यूनियन का प्रेसिडेंट जगमोहन स्ट्राइक का नोटिस दे गया था। उन्होंने सोचा था कि वे आज स्टाफ की मीटिंग बुलाकर विचार-विमर्श करेंगे और कोई-न-कोई उपाय सोच निकालेंगे, किंतु लड़कों ने उनके आने के पहले से ही हड़ताल कर रखी है और वे किसी की भी कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं हैं···

"उनकी मांगें क्या हैं ?" डा० मेहता ने मात्र जिज्ञासावश पूछा।

"मांगें कुछ भी हों।" प्रिंसिपल साहब ने कहा, "बात सिद्धांत की है। उन्हें चाहिए कि पहले वे आएं। बातचीत करें···।"

"वे लोग बातचीत नहीं करना चाहते थे ?" मिश्रजी ने पूछा।

"वे लोग अंदर आने तक को तैयार नहीं।" प्रिंसिपल बोले, "वे धमकाकर, अपनी बात मुझसे मनवा लें, यह संभव नहीं है। मैं अनुशासन को पहली शर्त मानता हूं और अपने सिद्धांतों के लिए मैं अपने प्राण दे दूंगा···।"

"ठीक है सर !" मिश्रजी फिर बोले थे, "इस प्रकार तो वे धमकाकर अपनी हर बात हमसे मनवा लेंगे। आखिर कोई सीमा होती है। हम कब तक उनके सामने झुकते जाएंगे ! हम सब आपके साथ हैं, आप जो चाहें करें···।"

और तभी चपरासी बेतहाशा भागता हुआ स्टाफ रूम में आया था, "साहब ! वे लोग आपकी कार को पत्थर मार रहे हैं।"

"मेरी कार को पत्थर मार रहे हैं !" प्रिंसिपल उछलकर अपने स्थान पर खड़े हो गए, पर वे अपनी जगह से एक डग भी नहीं खिसके, "गो एंड सी ! जाकर देखिए वे लोग क्या कर रहे हैं।"

पर कोई भी भागकर जाने को तत्पर नहीं दीखा। सब ही खड़े भर हुए और प्रिंसिपल साहब की अगली आज्ञा की प्रतीक्षा करते रहे।

हड़तालों में सामान्य रूप से पथराव बहुधा हो जाया करता है, उसमें कोई नई बात नहीं थी। सवेरे भी लड़कों ने पत्थर मारकर ऊपर की खिड़कियों के कुछ शीशे तोड़े थे। किंतु, अब सबकुछ छोड़कर विशेष रूप से प्रिंसिपल की कार पर पथराव करने का एक ही अर्थ था—वैयक्तिक नुकसान !

डा० मेहता को याद आया, सवेरे भी जगमोहन ने यही कहा था कि उनसे या किसी भी अध्यापक से उनका कोई विरोध नहीं था। उन्हें लगा कि विरोध प्रिंसिपल के पद से, प्रशासक से भी नहीं था। यह तो वैयक्तिक विरोध था, एक व्यक्ति का विरोध, जो प्रिंसिपल भी था।

'टींडा !' उनके भीतर फुरहरी-सी दौड़ गई।

प्रिंसिपल ने कई बार आंखें मचकाकर, फिर से चपरासी को देखा और आकस्मिक आक्रमण करते हुए दरिंदे के समान हकलाकर चपरासी को डांटा, "मेरा मुंह क्या देख रहा है, जाकर उन्हें मना कर !"

प्रिंसिपल साहब आवेश में थर-थर कांप रहे थे। पर अन्य लोगों के समान शायद वे भी बाहर गेट पर जाकर लड़कों का सामना करने को तैयार नहीं थे···उनके चेहरे पर जोंक-सा चिपका नपुंसक, बूढ़ा आक्रोश, कभी वीभत्स लगता था और कभी हास्यास्पद।

"यह तो साफ गुंडागर्दी है साहब !" स्टाफ की भीड़ में से लोगों को कोहनियां मारते हुए थापर साहब आगे बढ़ आए, "हमें पुलिस को टेलीफोन कर देना चाहिए।"

थापर साहब···! डा० मेहता ने वितृष्णा से मुंह बिचकाया। लोग ऐसे समय पर भी समस्या का समाधान न निकालकर, अपना महत्त्व भर

जताने का प्रयत्न करते हैं। यदि इस समय इन्हें ही पुलिस को टेलीफोन करने को कह दिया जाए, तो कभी न करें। कॉलेज में पुलिस बुलाने की ज़िम्मेदारी वे क्यों लें। हां! यदि कोई पुलिस बुला दे और स्थिति नियंत्रण में आ जाए, पुलिस का आना कोई गलत मोड़ न ले तो वे प्रिंसिपल को अवश्य याद दिलाएंगे कि पुलिस को बुलाने का प्रस्ताव उनका था।

"हां! पुलिस को बुलाओ!" और प्रिंसिपल साहब, अनभ्यस्त बच्चे के समान लड़खड़ाते हुए स्टाफ रूम से निकल पड़े।

कोई नहीं समझा कि पुलिस को बुलाने की ज़िम्मेदारी उन्होंने किस को सौंपी है।

कौन हैं ये लड़के—डा० मेहता सोच रहे थे—कोई अजनबी नहीं हैं। गुंडे भी नहीं हैं, चोर-डाकू भी नहीं हैं। बच्चे हैं। जिसको डांट दो वही रो दे। वे ही तो बच्चे हैं—जिन्हें वे दो वर्षों से पढ़ा रहे हैं। जगमोहन ही तो प्रेसिडेंट है। रोज़ उन्हें दिन में छह बार नमस्ते करता है। उनकी बात सुनता है, मानता है। आरंभ में कभी बदतमीज़ भी रहा था—पर अब तो काफी शालीन हो गया है।

उन्होंने जगमोहन को पढ़ाया है—इन सब लोगों ने पढ़ाया है। क्या इनमें से किसी का भी जगमोहन और उसके साथियों पर कोई अधिकार नहीं रह गया है? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि वे जाकर जगमोहन के सामने खड़े हो जाएं? उनको सामने खड़े देखकर भी क्या वह पत्थर उठाकर प्रिंसिपल की कार को मारेगा? क्या उस पर इतना भी नैतिक अधिकार नहीं है उनका—या किसी का—कि जाकर उसका पत्थर वाला, मारने के लिए उठा हुआ हाथ पकड़कर उसे प्यार से झिड़क दे—'जगमोहन! क्या करते हो?'

यदि वे ऐसा करें—यदि वे उसकी बांह पकड़ लें; तो क्या करेगा वह? क्या वह उनका हाथ झटक देगा? क्या वह उन्हें धक्का देकर परे हटा देगा? क्या ये सारे लड़के घेरकर उन्हें पीटेंगे? है लड़कों में साहस?

पर क्या उनमें है हिम्मत कि जाकर उनके सामने खड़े हो जाएं?

उन्हें लगा, वे किसी क्षुब्ध भीड़ का सामना करने का साहस नहीं रखते—बंदूक लेकर भी। इस मामले में वे काफी डरपोक हैं। पर अपने

छात्रों के सामने ? हां, वे अपने छात्रों के सामने खड़े हो सकते हैं। उनमें इतना नैतिक बल है। जिसे पढ़ाया है, वह उन पर हाथ नहीं उठा सकता। वे उसका रास्ता रोक सकते हैं, उसका उठा हुआ हाथ पकड़ सकते हैं, चाहे उस हाथ में पत्थर हो या बम !

प्रिंसिपल स्टाफ रूम से निकलकर बाहर गेट की ओर नहीं गए, वे सीढ़ियों की ओर मुड़ गए थे। तो प्रिंसिपल ऊपर की मंज़िल के किसी कमरे की खिड़की से निरीक्षण करेंगे। वहां कोई जोखिम की बात नहीं थी। लड़कों की पहुंच से दूर रहकर भी उन्हें देखा जा सकता था।

सारा स्टाफ प्रिंसिपल के पीछे-पीछे चल पड़ा।

पर उन लोगों के चलने में कोई उत्साह नहीं था, कोई तत्परता नहीं थी। वे तो प्रिंसिपल के पीछे-पीछे, पीठ पीछे हाथ बांधे, सर झुकाए, इतनी शालीनता से चल रहे थे, जैसे किसी अर्थी के पीछे-पीछे, शव-यात्रा में लोग चलते हैं।

और ऊपर की मंज़िल के उस कमरे की खिड़की से प्रिंसिपल और सारे स्टाफ के साथ डा० मेहता ने भी कैंटीन के तंबू को धू-धू जलते देखा था।

आग की लपटों को देखकर वे एकदम सिहर उठे थे। वे इन्हीं लड़कों को रोकने की बात सोच रहे थे ? वे समझते थे कि वे अपने विद्यार्थियों के सामने छाती तानकर खड़े हो सकते हैं, चाहे वे कितनी ही आक्रामक स्थिति में क्यों न हों। और ये हैं उनके विद्यार्थी ! उन्होंने सबके देखते-देखते, उनकी आंखों के सामने कैंटीन के तंबू को आग लगाई थी। इन लड़कों की आंखों की लाज-शरम मर चुकी है और जिनकी आंखों में संकोच नहीं रहा, उन्हें वे कैसे मनाएं, कैसे रोकें ? वे क्या उनके विद्यार्थी रह गए हैं ?

आखिर इन विद्यार्थियों और दंगा-फसाद करने वाले गुण्डों में अन्तर ही क्या रह गया है ?

वे लोग क्या हैं ? ए ग्रुप ऑफ गुंडाज़। इन्हें तो अवश्य ही पुलिस में दे देना चाहिए। सारा स्टाफ खड़ा देखता रहा और उन्होंने कैंटीन फूंक दी। कल वे इसी प्रकार कॉलेज की बिल्डिंग फूंक देंगे और कोई उनसे कुछ न कह सकेगा। बात यदि बढ़ जाए और प्रिंसिपल या किसी अध्यापक को पीटने लग जाएं, तो उनका कोई क्या कर लेगा ?

कितने निस्सहाय हैं वे लोग ! अपने ही कॉलेज में, अपने ही विद्यार्थियों के हाथों कैंटीन जलती सब देखते रहे और कोई उन्हें रोक नहीं पाया। ऐसी निस्सहायता तो उन्होंने पहले कभी नहीं भोगी थी।

डा० मेहता को आज तक अधिकारियों की अथॉरिटी पर बहुत विश्वास था। वे प्रिंसिपल और सारे स्टाफ को अधिकारी ही मानते थे। बाहर न सही, पर कॉलेज में तो उनकी बात कोई कैसे टाल सकता था ! वे रक्षक थे अनुशासन के, नियम-कानून के···पर आज उन्होंने देखा था कि उन लोगों के पास कोई अधिकार नहीं था। वे किसी की रक्षा नहीं कर सकते थे···शायद अपनी भी नहीं। अधिकार के पीछे या तो प्रेम पर आश्रित मन का बंधन होता है, या फिर भय पर आश्रित शारीरिक बल। अध्यापकों और छात्रों के बीच का मन का बंधन जाने कब टूट गया था। पर इतना वे जानते थे, वह अब नहीं था। और···शारीरिक बल; वह भी नहीं था, जो भय उत्पन्न कर सके। तो फिर कॉलेज का खुदा भी बस पत्थर का ही बुत निकला···

"पुलिस को बुलाइए।" प्रो० वर्मा ने कहा "पर केवल बुला लेने से कुछ नहीं होगा। लिखित रिपोर्ट करनी पड़ेगी और गवाहों के रूप में कुछ लोगों को हस्ताक्षर करने पड़ेंगे। नहीं तो पुलिस कोई एक्शन नहीं लेगी।"

"हां-हां।" प्रिंसिपल बोले, "सब लोग साइन करेंगे। एवरी बॉडी हैज़ सीन दैम !"

"पर मैंने अपनी आंखों से किसी को आग लगाते हुए नहीं देखा।" मिश्रजी ने जल्दी से कहा, "मैं काफी पीछे था।"

और डा० मेहता देख रहे थे कि शायद प्रत्येक व्यक्ति मिश्रजी वाला वाक्य ही दुहराना चाह रहा था। भय से पीले पड़े हुए चेहरे। पुलिस के सामने गवाही कौन देगा—कल ये लड़के उसी के घर को आग लगा दें तो ? कौन बचाएगा उसे ?

डा० मेहता ने कॉलेज की सड़क पर मुड़ते हुए ही देख लिया था कि स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। कॉलेज के गेट के सामने भीड़ उसी प्रकार विद्यमान थी। हड़ताल अभी चल रही थी। कल उनके चले जाने के बाद भी कोई समझौता नहीं हुआ था।

समझौता इन लड़कों के साथ हो भी क्या सकता है ?—उन्होंने सोचा।—समझौता उनके साथ होता है, जो कुछ सुनें। बातचीत करें। अपनी तकलीफें बताएं, दूसरे की मजबूरियां सुनें। जो आग लगाने, मार-पीट करने, तोड़-फोड़ करने के लिए तैयार बैठे हों, उनके साथ क्या बात-चीत और क्या समझौता ? उनका इलाज तो एक ही है—डंडा।

और यहां यह तमाशा है कि यूनिवर्सिटी में पुलिस नहीं आएगी, कॉलेज में पुलिस नहीं आएगी। विद्यार्थी हैं भई—प्रिविलेज्ड लोग। जो चाहे कर लें, उन्हें कोई नहीं रोकेगा। जो विद्यार्थी अध्यापक की आंख के इशारे से बात मान जाता है, उसके विरुद्ध पुलिस-एक्शन न हो, न सही ! पर ये लोग—नियमित गुण्डे। इनका कोई अध्यापक क्या करेगा ! अध्यापक, अध्यापक है, कोई पहलवान नहीं, बॉक्सर नहीं। अजब तमाशा है···

कॉलेज के समीप आते हुए, उन्हें अपने भीतर भय की कोई नई परत खुलती-सी जान पड़ी। इस समय स्थिति तनावपूर्ण है। लड़के वहशियों के समान बिफरे हुए हैं। डा० मेहता आखिर तो कॉलेज के अधिकारी वर्ग से सम्बद्ध हैं। फिर उन्होंने समय-समय पर कुछ लोगों की डांट-डपट की होगी, भला-बुरा कहा होगा। हो सकता है कि किसी को फाइन भी करवाया हो, सस्पेंड भी करवाया हो। यदि इस समय वे लोग घेरकर उन्हें पीटने लगें तो कोई उनकी मदद को भी नहीं आएगा।

तो ? पर इस आशंका के ही आधार पर वापस तो नहीं लौटा जा सकता था। यदि वे इस प्रकार, इन बातों से डरते रहे तो फिर उन्हें कॉलेज में पढ़ाना छोड़ देना पड़ेगा। यहां तो डांट-डपट भी चलेगी और हड़तालें भी होंगी ही।

लड़कों ने उन्हें देखा तो उनके लिए रास्ता बनने लगा। एक तरह की चुप्पी भी भीड़ पर आ उतरी और एक प्रकार की गनगनाहट भी बढ़ गई।

और जगमोहन उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा था।

डा० मेहता जैसे वितृष्णा में नहा गए। आज यह हाथ जोड़े उनके सामने खड़ा है और कल यह वहशियों के समान कॉलेज कंपाउंड की दीवार पर दौड़ रहा था। इसने कैंटीन को आग लगाई थी। और गुंडे कैसे होते हैं ? रायट्स में जो लोग जनता के घर जला देते हैं, सामान लूट लेते हैं, भोली

लड़कियों को उठाकर ले जाते हैं, वे और कैसे होते हैं ? ऐसे ही तो ! आज इसने आग लगाई है—कल यह उसके आगे के काम भी करेगा···

उन्होंने केवल अभ्यासवश, हल्के से सर हिलाकर, उसका नमस्कार स्वीकार किया और गेट की ओर खिसके।

पर जगमोहन ने उन्हें रास्ता नहीं दिया। अब वह नमस्कार करने के लिए सामने नहीं आया था—वह उनका रास्ता रोके खड़ा था।

"आप हमसे नाराज़ हैं सर ?"

क्या कहें वे ? क्या कह दें कि नाराज़ नहीं हैं ? तो क्या खुश हैं ? उन्हें शाबाशी दें कि बहुत अच्छा किया तुमने। कल कैंटीन जलाई है, आज कॉलेज की बिल्डिग भी फूंक दो।···या फिर कह दें कि वे नाराज़ हैं। उन्हें डांटें वे, उनसे झगड़ पड़ें और फिर···

"कम-से-कम खुश तो नहीं ही हूं।" वे सायास मुस्कराए।

वे कुछ सहज हो गए थे।

"क्यों सर ?" जगमोहन के चेहरे पर कोई बेगानापन नहीं था। वह अब भी बच्चों के समान मचलकर, उसी प्रकार साधिकार बोल रहा था, जैसे वह पहले बात किया करता था।

"तुमने आग क्यों लगाई ?" डा० मेहता की आवाज़ में कुछ तल्खी आ गई थी।

"पर सर ! हमें आग लगाने के लिए मजबूर किसने किया ?" जगमोहन अब बच्चों के समान मचल नहीं रहा था। उसके चेहरे पर प्रौढ़ता आ गई थी। वहां स्नेह नहीं, तर्क था—बराबरी का।

"इसमें मजबूर करने की कौन-सी बात है ?" डा० मेहता धीमी पर तीखी आवाज़ में बोले, "तुम अपनी बात कहते। हममें से किसी से कहते। अपनी आवश्यकताएं बताते। यह कोई बच्चों का तरीका है, जो तुम लोगों ने पकड़ा है—हम कोई तुम्हारे शत्रु हैं ?"

जगमोहन कुछ और विश्वस्त होकर खड़ा हो गया।

"आप ठीक कह रहे हैं सर !" वह बोला, "पर यह बताइए कि हम से बात करने को तैयार कौन है ? हम इतनी बार प्रिंसिपल के पास गए। इतनी एप्लिकेशंस दीं, पर कुछ हुआ ? आपको पता है, हमारी मांगें क्या

हैं ?"

"नहीं।"

"आप सुनेंगे ?" उसने अविश्वास के साथ पूछा।

"सुनाओगे तो क्यों नहीं सुनूंगा।"

"तो सर! मैं वताऊं।" वह बोला, "कोई बड़ी मांग नहीं है सर! हम कोई बहुत ऊंची बातें नहीं करते। बड़ी छोटी-छोटी व्यावहारिक बातें हैं। पहली मांग है हमारे लिए पीने के पानी का उचित प्रबंध किया जाए।"

"है नहीं क्या ?" डा० मेहता ने पूछा।

"कहने को तो है।" जगमोहन बोला, "एक पूरा कमरा इसी काम के लिए है। उसमें दस-बारह घड़े रखे हुए हैं और एक वाटरमैन भी है। पर आप जानते हैं सर···।" उसकी आवाज़ तेज़ हो गई, "उन घड़ों में कितना बासी पानी रहता है। कितना जूठा पानी उसमें वापस उंडेला जाता है। कितने हाथों की मैल उसमें धुलती है। कितने लोग उसमें थूक जाते हैं और कॉलेज के चपरासी उस पानी से वहीं बैठकर कपड़े धोते नजर आते हैं···।"

उसका चेहरा उत्तेजना से लाल हो उठा था।

"तो गंदा भी तो लड़के ही करते हैं—तुम्हीं लोग करते हो।" डा० मेहता के भीतर के अध्यापक ने स्वचालित ढंग से प्रतिकार कर दिया।

"चोर भी जनता में से ही कोई होता है सर!" जगमोहन बोला, "फिर भी जनता पुलिस से अपनी सुरक्षा की मांग करती है। और फिर घड़े ही क्यों हैं। पानी की टंकी क्यों नहीं, कूलर क्यों नहीं ?···"

डा० मेहता कुछ क्षण शांत रहे। उन्होंने प्रयत्न कर, अपने भीतर से उस रूढ़ अध्यापक को बाहर निकाल फेंका, जो केवल अभ्यासवश ही लड़कों की बात का प्रतिकार कर देता था। सहज व्यक्ति के समान उन्हें लड़कों की शिकायतें सुनकर उन्हें तौलना चाहिए। "स्टाफ के लिए भी एक घड़ा है और गंदगी की शिकायत हमें भी है।" वे बोले।

"तो सर!" जगमोहन उसी उत्तेजना में बोलता गया, "जब आप लोगों के लिए साफ और ठंडा पानी नहीं है तो हमारे लिए क्या होगा ? कई लड़के दिन-भर कॉलेज में पानी ही नहीं पीते और प्यासे घर लौट जाते हैं···।"

डा० मेहता का जी चाह रहा था, वह भी जगमोहन को सुनाएं कि

कैसे रोज़ स्टाफ रूम में गंदे पानी, गंदे तौलिए, गंदी कुरसियों और गंदे फर्श को लेकर शिकायतें होती हैं। कॉलेज के पिछले छह वर्षों के इतिहास में लोग निरंतर कोशिश करते आए हैं, किंतु अभी तक कुछ हो नहीं पाया है।

उन्हें लगा, पानी तो एक वहाना था···उसने उनके मन में अनेक शिकायतें जगा दी हैं—कैंटीन को लेकर, लायब्रेरी को लेकर, कॉलेज की व्यवस्था को लेकर, प्रिंसिपल के व्यवहार को लेकर···

पर क्या वे बातें जगमोहन से की जा सकती हैं? यदि उन्होंने एक भी किस्सा सुनाया तो···वह तो लड़कों को भड़काने वाली बात होगी। नहीं! उन्हें केवल सुनना है···

"और सर!" जगमोहन कह रहा था, "यह नहीं कि कॉलेज के लिए कूलर खरीदा नहीं गया। खरीदा गया है, पर वह कहां है···टींडे के घर में सर! हम क्या पानी पीने वहां जाएंगे?"

डा० मेहता ने उसे डांटा, "जगमोहन!"

"कोई बात नहीं सर! कोई नहीं सुन रहा!" वह बोला, "आप कहते हैं, हम आपके बच्चे हैं। हम भी मानते हैं कि हम आपके बच्चे हैं। पर यह तो बताइए कि संसार में बच्चों को साफ और ठंडे पानी के लिए भी हड़तालें करनी पड़ी हैं क्या? मैं कहता हूं, पैसा खाओ···सब खाते हैं, पर इतना तो मत खाओ।"

डा० मेहता चुप रहे। क्या कहते? जो भी कहते, ऊपर से ही कहते। सच्चाई से इंकार कैसे करें? वे इस बात से परिचित थे कि इस प्रकार की बातें कॉलेज में होती रहती हैं। कुछ निराधार भी होंगी—! पर अभी पिछले सप्ताह ही एक लड़के ने उनसे कहा था, "सर! कोई मैगज़ीन पढ़ने का तो मज़ा ही नहीं है। पहले वे प्रिंसिपल के घर जाती हैं और जव तक वहां से लौटकर कॉलेज की लायब्रेरी में आती हैं, तव तक नया अंक आने का समय हो जाता है।'

और वह लड़का ऐसा नहीं था, जिसे वे झूठा कह सकते।

"और सर!" जगमोहन कह रहा था, "कैंटीन की बात! कैंटीन की चीजें, आप ही बताइए, खाने योग्य हैं क्या? पिछली बार आपने ही कहा था कि कैंटीन की चीज़ें खाकर आप बीमार पड़ना नहीं चाहते। वहां

की मक्खियां, गंदी क्रॉकरी और कैंटीन वाले का घटिया व्यवहार···आपको पता है, पिछले महीने उसने प्रो० वर्मा के साथ गाली-गलौच की थी ?"

डा० मेहता को अच्छी तरह मालूम था।

"सर ! मैं तो कहता हूं कि आप लोगों को चाहिए था कि कैंटीन को आग लगा देते। आपका काम हमने किया है। आप लोगों को चाहिए कि आप लोग गेट के बाहर आकर हमारे साथ खड़े हो जाएं। आप लोग हड़ताल क्यों नहीं कर देते सर ?"

और डा० मेहता सोच रहे थे कि आखिर वे हड़ताल क्यों नहीं कर देते ?

डा० मेहता की डिसेंसी कहीं से आहत हो गई थी।

आज उन्होंने जगमोहन से कितना कुछ सुना था—कितना भद्दा, पर सच। वे लोग आखिर स्वयं को इन छोटी-छोटी दैनिक समस्याओं से पृथक् कैसे रख सकते हैं ?

सच्चाई यह थी और यह खुलकर सामने आनी चाहिए। पर ये कितनी घटिया बातें हैं ! उनके जैसे एक आदर्शवादी व्यक्ति को ऐसी बातें कहते अच्छी लगेंगी क्या ? प्रिंसिपल—! एक शरीफ बूढ़ा आदमी ! बीवी-बच्चों वाला, कार और कोठी वाला ! उसने सारा जीवन ऊंचे पदों पर काम किया है। वह कुरसी से उठता है, तो सब लोग उठ खड़े होते हैं। वह कमरे से बाहर निकलने लगता है, तो दो-दो चपरासी कमरे की चिक उठाने के लिए झुक जाते हैं। एक पूरी व्यवस्था का प्रतीक— प्रिंसिपल।

उस प्रिंसिपल के विषय में यह कहना कि कॉलेज का कूलर वह अपने घर ले गया, लायब्रेरी की पत्रिकाएं पहले उसके घर जाती हैं, कॉलेज के कैरम बोर्ड उसके पोते-पोतियों के खेलने के काम आते हैं, या अपने लिए कुछ पुस्तकें मुफ्त लेने के लिए वह किसी बुक-सेलर से कॉलेज लायब्रेरी के लिए पां - हज़ार रुपयों का कूड़ा-कबाड़ा खरीद लाया है, जो लायब्रेरी के उपयुक्त नहीं था !—ये सारी बातें कितनी छिछली हैं, कितनी ओछी। इनडीसेंट ! क्या यह सबकुछ डा० मेहता कह पाएंगे ?

वे पढ़े-लिखे आदमी हैं—एम० ए०, पी-एच० डी०। कॉलेज में पढ़ाते

हैं। लोग उन्हें प्रोफेसर कहते हैं। उन्हें व्यापक परिप्रेक्ष्य में बातों को सोचना है, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर। वे कहां की टटपुंजिया बातों में ऊलझ गए ! उनका काम चिंतन-विचार है। किसी भले आदमी की इज़्ज़त उतारना क्या उनको शोभा देगा !

वैसे तो उन्हें कितनी ही बार लगा था कि जिस परिवार के लोग ज़िंदा रहने के लिए संघर्ष कर रहे हों—उस परिवार के बड़े व्यक्ति को कोई अधिकार नहीं है कि वह ऐश करे। जिस कॉलेज में लड़कों के पढ़ने के लिए कमरे न हों, वहां का प्रिंसिपल एक छोटे कमरे में अपना गुज़ारा क्यों नहीं कर सकता ? उसे क्या अधिकार है कि वह कॉलेज का सबसे बड़ा कमरा अपने लिए, बगल का कमरा अपने पी० ए० के लिए, एक कमरा बर्सर के लिए ले ले ! वह अपने लिए दो चपरासी क्यों रखे ? आखिर गरीब राष्ट्र के राष्ट्रपति को गरीबों के राष्ट्रपति के समान ही रहना चाहिए। उसका बढ़ा हुआ खर्च राष्ट्र पर बोझ डालेगा और राष्ट्र में असंतोष बढ़ेगा···

यह अध्यापकों का और विद्यार्थियों का कैसे पिता-पुत्र का संबंध हुआ—जहां लड़कों के पढ़ने के लिए कमरे न हों और प्रिंसिपल के पी० ए० को भी दोपहर को आराम करने के लिए कमरा चाहिए। क्या यह नौकरशाही के अवशेष राष्ट्रीय शिक्षा के अनुकूल हैं ? क्या इनसे असंतोष नहीं फैलेगा ?

···ठीक है, पर व्यवस्था की आलोचना और चीज है, और किसी व्यक्ति पर आरोप लगाना और बात ! व्यवस्था की आलोचना में उनका विचारक-चिंतक रूप ही उभरेगा, जबकि व्यक्ति पर आक्षेप करना घटिया प्रकार की राजनीतिक गुटबंदी लगेगी···

डा० मेहता के स्टाफरूम में पहुंचने से पहले ही मीटिंग आरंभ हो चुकी थी।

"मैं यह चाहूंगा," प्रिंसिपल कह रहे थे, "कि आप लोग अपने-अपने सोशल-ग्रुप से मिलें, जिन लड़कों के आप गार्डियन-ट्यूटर हैं। आप पता लगाएं कि आखिर उनकी समस्याएं क्या हैं ? आप उनकी घरेलू समस्याओं

पर भी उनको सुझाव दें। उन्हें किताबों की आवश्यकता हो—आप मुझसे कहें।…"

डा० मेहता के भीतर कोई धातु अजाने ही गर्म होती जा रही थी।

प्रिंसिपल कह रहे थे, "मैं उनकी हर समस्या दूर करने को तैयार हूं। मुझे लगता है कि हमारे पास जगह की कमी है। विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक है। यही कारण है कि हम उन्हें कामन रूम नहीं दे पाते, यूनियन रूम नहीं दे पाते और जगमोहन जैसे लफंगे लड़के नेता बनकर उन्हें भड़काते हैं। वे हड़तालें करते हैं, आग लगाते हैं…"

किसी तेज़ चीज़ ने डा० मेहता के भीतर की गर्म धातु के ऊपर के सारे छोटे-बड़े पर्दे चीरकर रख दिए थे। वह गर्म धातु तपकर लाल सुर्ख हो गई थी और पूरी तेज़ी से दहक रही थी।

'झूठा कहीं का!' डा० मेहता होंठों में बुदबुदाए।

"…आपमें से कोई सुझाव देना चाहेगा?" प्रिंसिपल कह रहे थे।

डा० मेहता अनजाने ही उठकर खड़े हो गए थे। उनका चेहरा दप-दप कर रहा था। कानों की लवें लाल थीं और आवाज़ में आवेश भरा हुआ था।

"आप मुझे सच बोलने के लिए क्षमा करेंगे।" वे बोले, "आपने छात्रों की समस्या की बात की है। मैं उनसे सोशल ग्रुप में मिलता हूं, ट्यूटोरियल ग्रुप में मिलता हूं और वैसे भी मिलता हूं। जब मैं उनकी घरेलू समस्याएं पूछता हूं तो लड़के कहते हैं, 'सर! कॉलेज की समस्याएं तो सुलझा दीजिए।' पढ़ने के लिए कमरे नहीं, बैठने को उचित फर्नीचर नहीं, पढ़ने के लिए लायब्रेरी में पुस्तकें नहीं, पीने को पानी नहीं, अन्य आवश्यकताओं के लिए टायलेट नहीं। तो फिर हड़ताल नहीं होगी तो क्या होगा?" सहसा जैसे डा० मेहता होश में आ गए थे। वे क्या कह रहे हैं? लोग कैसे सन्न-से बैठे हैं, जैसे भले घर के लोगों की सभा में किसी ने खुलेआम मां-बहन की गाली दे दी हो…सबकी आंखों में उपेक्षा थी। इस उच्छृंखलता को कौन पसंद करेगा?

डा० मेहता को लगा, वे फिर अपने पद की मर्यादा को भुला, छिछले स्तर पर उतरकर बोले हैं। और कोई भी गंभीर और उत्तरदायित्व

वाला व्यक्ति इस प्रकार की घटिया बातें नहीं करेगा। वे अभी तक अपने पद के अनुकूल गंभीरता और संयम विकसित नहीं कर पाए हैं। एम० ए०, पी-एच० डी० हो गए तो क्या हुआ? सैद्धांतिक चर्चा छोड़ वे कैसी घटियां बातें ले बैठे!…

मीटिंग में मौन छाया रहा। कोई कुछ नहीं बोला। सब लोग गर्दनें झुकाए फर्श को देख रहे थे।

एक लंबे सन्नाटे की सांय-सांय प्रो० वर्मा ने खखारकर तोड़ी। फिर वे खांसे। यह उनके बोलने की भूमिका थी।

वे बोले, "ये बड़ी छोटी-छोटी बातें हैं, जिन पर हम विचार कर रहे हैं। मेरा विचार है, हमें समस्या को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। हमारी समस्या है, जगह की कमी, क्योंकि छात्रों की संख्या अधिक है। वह इसलिए है, क्योंकि देश की जनसंख्या बहुत बढ़ गई है…।"

डा० मेहता सर झुकाए अपने गंभीरता के अभाव को कोस रहे थे—मैं भी कभी-कभी भरी सभा में मूर्खों का-सा व्यवहार कर देता हूं।

और सहसा ही वे एक और धरातल पर भी जाग उठे।

हड़ताल के पहले दिन लड़कों ने उनके ज़िंदाबादी नारे लगाए थे, तो उन्हें लगा था कि प्रिंसिपल उनसे नाराज़ हो सकते हैं। आज वह बात वे एकदम भूल बैठे हैं। वे ये सारी बातें प्रिंसिपल के सामने भरी सभा में कह बैठे हैं। उन्हें इसका प्रतिकार करना ही होगा।

मीटिंग के बाद से डा० मेहता काफी खिन्न रहे थे।

उन्हें भी बस बेवक्त ही आक्रोश बहाकर ले जाता है। यही कारण है कि लोग उन्हें अधिक गंभीरता से स्वीकार नहीं करते। गंभीर चिंतन की गोष्ठियों में उन्हें आमंत्रित नहीं किया जाता। उन्हें स्वयं भी लगता है कि वे समय-समय पर काफी उच्छृंखल और मुंहफट हो जाते हैं।

उन्हें पश्चात्ताप काफी सालता रहा था।

कॉलेज में हड़ताल की तनातनी चलती रही। पर फिर कुछ लोगों ने बीच में पड़कर लड़कों को इतने भर के लिए तैयार कर लिया था कि वे हॉल में आकर प्रिंसिपल और अपने अध्यापकों की बात सुन लें। उसके

पश्चात् उन्हें अधिकार होगा कि जो चाहें, वे करें।

डा० मेहता के लिए यही एक अवसर था, जहां वे अपने पिछले कृत्य का पश्चात्ताप कर सकते थे। उनके सामने एक ही मार्ग था कि जो कुछ उन्होंने स्टाफ की मीटिंग में कहा था—लड़कों के सामने उसका खंडन कर दें।···पर क्या प्रिंसिपल उन्हें इसका अवसर देंगे?···उन्हें काफी संदेह था। अव तक वे प्रिंसिपल की ब्लैकलिस्ट पर चढ़ गए होंगे और प्रिंसिपल उन्हें उत्तरदायित्वहीन और खतरनाक आदमी मानने लगे होंगे।···

पर यदि यह अवसर गया, तो फिर गया। फिर कुछ भी नहीं हो पाएगा···स्वयं को काफी समझाकर और पूरी हिम्मत बांधकर प्रिंसिपल के पास पहुंचे।

"सर! मैंने बाद में बहुत सोचा है और इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं···।"

"कि लड़के पानी न मिलने से हड़ताल करते हैं।" प्रिंसिपल के चेहरे पर काफी तीखापन था।

"···नहीं सर!" डा० मेहता काफी नर्वस हो गए थे, "नहीं सर! मेरी लाइन ऑफ थिंकिंग बड़ी गलत थी।" उन्होंने माथे का पसीना पोंछा।

"वही तो···डा० मेहता।" प्रिंसिपल का रुख क्षण-भर में बदल गया था, "मैं भी सोच रहा था, आप जैसा विद्वान व्यक्ति···।"

"नहीं सर!" डा० मेहता बोले, "मैंने सोचा है, हमें सैद्धांतिक रूप से इस समस्या की जड़ तक जाना चाहिए और यह कोई संकीर्ण समस्या नहीं है। अमरीका में, इंग्लैंड में, मैक्सिको में, जापान में···"

हॉल रेलगाड़ी के तृतीय श्रेणी के डिब्बे के समान भरा हुआ था। लड़के एक-के-ऊपर-एक चढ़े बैठे थे। मंच पर प्रिंसिपल और स्टाफ के लोग बैठे हुए थे। पर, प्रिंसिपल की उपस्थिति में हॉल पर व्याप जाने वाला मौन आज नहीं था। लड़कों ने अध्यापकों के सामने शालीन बनकर बैठने की आवश्यकता नहीं समझी थी। आज वे विरोधी दल के समान, अपने शत्रु की बात सुनने के लिए वहां उपस्थित थे—फिर शिष्टाचार या अनुशासन क्या?

हॉल में तनाव था और उत्तेजित चीख-चिल्लाहट।

डा० मेहता बोलने के लिए खड़े हुए। शोर तनिक भी कम नहीं हुआ।

वे सोच रहे थे, लड़कों को चुप कैसे कराएं ?

उधर से जगमोहन उठकर खड़ा हुआ, "साथियो ! गुरुजी बोलेंगे। चुप हो जाओ।"

और लड़के उनकी बात सुनने को चुप हो गए।

डा० मेहता को अच्छा लगा। लड़के उनका सम्मान करते हैं। गुरु-शिष्य का नाता है। वे गुरु हैं, बड़े हैं। उन्हें गंभीरता का पल्ला नहीं छोड़ना चाहिए—न आदर्श का, न सिद्धांत का।···

"मित्रो !" वे बोले, "आपकी समस्याएं आपकी ही नहीं हैं। समस्या बहुत बड़ी है—व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है···।"

सहसा, लड़कों की मौन की दीवार में दरार पड़ गई। पहले तो कुछ गनगनाहट-सी हुई और फिर शोर मच गया।

"हमें पानी दो, रूस-अमरीका की बात मत करो।" किसी कोने से कोई चीखा।

डा० मेहता एड़ियां उठा-उठाकर जगमोहन को खोज रहे थे।

लड़कों में हलचल मच गई। वे सब अपनी जगहों से उठ खड़े हुए थे और बांहें उठा-उठाकर चीख रहे थे।

तब उन सारे चीखते-चिल्लाते सरों में से जगमोहन का सर उभरा। वह कुरसी पर खड़ा हो गया था शायद। वह मंच की ओर मुंह करके चीखा—"व्यवहार की बात करो—दर्शन मत बघारो···।" और पलटकर लड़कों से बोला, "चलो दोस्तो, बाहर। इस कॉलेज में अब टींडों के खेत बनेंगे।"

लड़के 'हो-ओऽऽऽ' करते हुए बाहर निकल गए। पीछे की बिखरी हुई कुरसियां, जिनमें से काफी इस वाक-आउट में हताहत हुई थीं।

डा० मेहता अपने बाएं हाथ में माइक पकड़े अपनी जगह खड़े सोच रहे थे, आज उन्होंने ऐसी कौन-सी बात कही ? गंभीरता कहां छोड़ी ? आदर्श से कहां चुके ?···

□□

स्वस्थ तथा स्तरीय पुस्तकों के
पाठकों के लिए

विकास
पेपरबैक्स

प्रस्तुत कर रहा है बहुत ही
कम मूल्य में प्रतिष्ठित लेखकों
की नई एवं रुचिकर रचनाएं